

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182426

UNIVERSAL
LIBRARY

SMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H
82

Accession No. G H 1382

B215

वन १२२१ ४२५ कक्षापाठक २
सिद्धान्त २ वृद्ध

This book should be returned on or before the date
marked below.

सिद्धार्थ बुद्ध

[सांस्कृतिक नाटक]

वनारसीदास 'करुणाकर'

भारती साहित्य मन्दिर
दिल्ली

प्रकाशक
गौरीशंकर शर्मा,
भारती साहित्य मंदिर,
फव्वारा, दिल्ली ।

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५५
मूल्य : दो रुपया

मु.
सुरेन्द्र प्रिंटर्स, लि
डिण्टीगंज, दिल्ली

भूमिका

प्रबल पाखंड महिमंडलाकुल देखि निन्द्यकृत अखिल मख-कर्म-जालं
सुद्ध बोधक धनग्यान गुनधाम अज बोध अवतार बंदे कृपालं ॥

—विनय पत्रिका

भारत के धार्मिक और राजनीतिक इतिहास में भगवान बुद्ध का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में चाहे बौद्ध धर्म का विरोध हुआ हो किन्तु उदार हिन्दू धर्म ने भगवान बुद्ध को उनकी अगाध कृष्णा के कारण दशावतारों में स्थान दिया है। इतना ही नहीं, बौद्ध धर्म का भारत में ह्रास हो जाने पर भी उसने भारतीय दर्शन और विचार-धारा को प्रभावित किया है। उसके ही कारण भारत चीन, जापान, तिब्बत और लंका आदि देशों का तीर्थ-स्थान बना हुआ है। उसी के कारण हम इन देशों से अपनी सांस्कृतिक एकता का अनुभव करते हैं। बौद्ध धर्म ने ही पहले-पहल जाति-पाति के बन्धनों को तोड़कर मानव-मानव की समता का पाठ पढ़ाया। बौद्ध धर्म के ही एक प्रमुख अनुयायी सम्राट अशोक ने, जिनके चक्र को हमने अपने राष्ट्र-ध्वज पर स्थान दिया है, प्रेम और विश्व-मैत्री का सन्देश भारतसे बाहर पहुंचाया। बौद्ध धर्म भारत की त्यागमयी संस्कृति का एक ज्वलन्त उदाहरण है। भगवान बुद्ध ने भरे जीवन में मानव दुखों के शमन के लिये ही राजमहल का विलास वैभव स्वेच्छा से त्याग कर बन-जीवन के कष्ट सहे और अन्त में मानव-दुखों का वासना-क्षय में शमन खोजकर विश्राम लिया।

श्री बनारसीदास कृष्णाकर का प्रस्तुत नाटक उन्हीं बुद्ध भगवान के तप और त्यागमय जीवन पर प्रकाश डालता है। नाटक बुद्ध महाराज के जीवन की कृष्णा के उद्घाटन में भली प्रकार समर्थ होता है और यह कृष्णा तब पराकाष्ठा को पहुंच जाती है जब कुमार राहुल और कपिलवस्तु

राज्य के अन्य उत्तराधिकारी बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाते हैं। नाटक में बुद्ध-जीवन की प्रमुख घटनाओं का बड़े कौशल से समावेश हुआ है और प्रसंगवश बौद्ध सिद्धांतों का भी संक्षेप में उद्घाटन हो गया है। नाटक छोटा है। और अभिनेयत्व के गुण रखता है। इस नाटक का मुख्य रस शान्त रस है। इसमें शांति के स्थायी भाव निर्वेद का अच्छा परिपाक हुआ है। बौद्ध धर्म में शांतिरस के आलम्बन रूप परमात्मा का कोई स्थान नहीं है। यहां मानव की मोक्ष या दुःख-निवृत्ति ही आलम्बन है। निर्वेद के सहायक रूप से जरा-मरण की वीभत्सता भी दिखाई गई है। नाटक में घटना चक्र भावातिरेक से कहीं भी कुंठित नहीं होने पाया है। भाषा सरस और मुहावरेदार है। इसकी सरल और सुबोध भाषा इसे लोकप्रिय बनाने में समर्थ होगी।

हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है। हिन्दी में देश से सम्बन्धित सभी धर्मों के साहित्य का समावेश होना आवश्यक है, फिर भगवान बुद्ध तो भारत की ही देन है। वे हमारे और अन्य एशिया के देशों के सम्बन्ध-सूत्र हैं। आशा है कि हिन्दी में इस नाटक का समुचित आदर होगा।

गोमती निवास

—गुलाबराय

दिल्ली का दरवाजा

आगरा ४-११-५५

जी. एल.

प्राक्कथन

मानव-जाति के महानतम शिक्षक महात्मा बुद्ध की जीवनगाथा और उनकी सद्धर्म-वाणी भागीरथी के आदि-स्रोत की तरह सदा निर्मल और परम शांति-दायक बनी रहेंगी। उन तथागत की २५०० वीं जयन्ती संसार शीघ्र ही मनाने जा रहा है। ऐसे अवसर पर हिन्दी में एक साहित्यिक और अभिनय योग्य नाटक लिखकर इस पुनीत पर्व में योग देने की मेरी प्रबल इच्छा जागृत हुई। फलतः यह नाटक पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है। नाटक में बौद्ध भावनाओं को समुचित आदर देने का विचार रक्खा गया है। राजकुमार सिद्धार्थ के बुद्धपद प्राप्त करने के पश्चात् उनके मुख से निकले वचन शास्त्रीय ही हैं, परन्तु नाटक में उनका समावेश इस प्रकार करने की चेष्टा की गई है कि वे स्वाभाविक और प्रसंग-संगत प्रतीत हों। बौद्ध भावनाओं के अनुसार पूर्ण निर्विकार तथागत का कोई पुरुष कैसे अभिनय करे— इसका विचार कर अग्रश्रावक सारिपुत्र को रंगमंच पर उन के साथ ही रखा है। जहां अभिनय में इस प्रकार की दुविधा हो वहां बुद्ध के वचन सारिपुत्र द्वारा कहलाये जा सकते हैं। बुद्ध-वचन के अवसर भी कम हैं।

प्रस्तुत नाटक के कथानक तथा बौद्ध दार्शनिक विचारों के लिये श्री राहुल सांकृत्यायन कृत 'बौद्धचर्या', भदन्त बोधानन्द कृत 'बौद्धचर्या पद्धति', श्री सूर्यनारायण चौधरी द्वारा अनुवादित महान बौद्धकवि अश्वघोष कृत 'बुद्धचरित' तथा 'धम्मपद' आदि ग्रन्थों का आधार लिया गया है। नाटकीयता की दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं में थोड़ा सा उल्ट फेर भी किया है, परन्तु बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित मुख्य घटनाओं का क्रम ठीक ही रखा गया है।

नाटक द्वारा पाठकों और दर्शकों को सिद्धार्थ के महान त्याग, उनकी विचित्र बौद्धिक स्वतंत्रता, महाप्रयत्न, दार्शनिक आधार आदि की रुचिपूर्ण,

थोड़ी परन्तु सही, जानकारी देने का प्रयास किया है, जिससे बुद्ध के जीवन और दर्शन के प्रति उनमें अधिक जिज्ञासा उत्पन्न हो; लेकिन नाटक की दृष्टि से केवल उस मर्यादा तक जहां नाटक का प्रवाह रुचिकर और अक्षुण्ण बना रहे।

नाटक शिक्षित वर्ग द्वारा ही अभिनय किया जा सकता है, क्योंकि कि वह साहित्यिक भी है। सिद्धार्थ के गृह-त्याग की घटना प्रसिद्ध और स्वयं नाटकीय है, जिसका अभिनय अनेक ढंग से होता रहा है। अतः 'महाभिनिष्क्रमण' का पहला अंक अभिनय और भाषा की दृष्टि से कुछ सरल ही रखा गया है। उसमें पात्र भी कम हैं और स्त्री-पात्र को रंगमंच पर नहीं लाया गया। यह अंक अलग से एकांकी नाटक है।

नाटक के प्रकाशन से पूर्व कतिपय विद्वानों ने इस की पाण्डुलिपि को देखा है, और अपनी सम्मति से लेखक को उत्साहित किया है। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार बा. गुलाबराय एम. ए. का मैं विशेषतया अनुग्रहीत हूं जिन्होंने ने पाण्डुलिपि को बड़ी रुचिपूर्वक देखा और नाटक के साहित्यिक पहलुओं पर विचार-विनियम कर मुझे अपनी सत्सम्मति से उत्साहित किया। लखनऊ बुद्ध विहार के भिक्षु प्रज्ञावन्द जी का भी मैं आभारी हूं जिन्होंने बौद्ध भावनाओं की दृष्टि से पाण्डुलिपि को पढ़ा और मुझे उनके समझने में सहायता पहुंचाई। अन्ततः मैं भारती साहित्य मंदिर के संचालक श्री श्यामलाल गुप्त का भी आभारी हूं जिन के सहयोग से ही अत्यन्त अल्प समय में यह नाटक प्रकाशित हो सका है।

विनीत

नौरंगाबाद, जी. टी. रोड
अलीगढ़
जी. एल.

ब. दा. करुणाकर
२.११. ५५

सिद्धार्थ बुद्ध

पहला अंक

महाभिनिष्क्रमण

बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित गृह-त्याग की घटना

पात्र

सिद्धार्थ—कपिलवस्तु के युवराज

शुद्धोधन—कपिलवस्तु के राजा, सिद्धार्थ के पिता

छन्दक—सारथी ।

मन्त्री—शुद्धोदन का मन्त्री

भिक्षुक—एक वृद्ध भिक्षुक

२ सैनिक, १ प्रहरी, १ संन्यासी

पहला दृश्य

स्थान—कपिलवस्तु नगर का राजमार्ग जो बन्दनवारों और पताकाओं से सुसज्जित है। नेपथ्य में कोलाहलपूर्ण जय-जयकार हो रहा है। एक वृद्ध भिक्षुक जिसकी कमर झुकी, बड़ी दाढ़ी, गन्दे अस्तव्यस्त बाल और फटे वस्त्र हैं, लाठी टेक कर द्रुतगति से आता है और संशकित होकर इधर-उधर देखता है। समय दिन। भिक्षुक प्रवेश करके एक ओर खड़ा होकर कमर सीधी करने की चेष्टा करता है।

भिक्षुक—(निःश्वास छोड़ कर)

आज युवराज पहली बार नगर भ्रमण को आये हैं। आज का दिन चूका तो फिर किस दिन की आशा करूँगा ? सारा जीवन इसी नगर में भिक्षा माँगते बीता है। मैं अपने कार्य में अब इतना सिद्धहस्त हूँ कि एक अवकाश मिलते ही सब कुछ पा लूँगा। सुना है राजकुमार बड़े कोमल हृदय हैं। वे दीन-दुखियों पर अनायास ही कृपा करते हैं। परन्तु इन अभागे राजा के सैनिकों को क्या पड़ी है जो भिक्षुकों को मार-मार कर भगा रहे हैं। भागते-भागते मेरे तो पेट में दर्द होने लगा है, ओह ! (पेट पकड़ता है) परन्तु मैं यों कैसे चला जाऊँ ! इस दिन-दिन के चना बटोरने से आज पीछा न छूटा तो फिर कब छूटेगा ! राजा भी सठिया गया है जो सैनिकों को ऐसी आज्ञा दी है कि युवराज के सामने कोई दीन दुखी न आये। भला, विचारे दीन दुखी क्या उसका महल छीन लेंगे ? मैं तो

नहीं जाऊंगा ।

(नेपथ्य में जयजयकार और कोलाहल होता है)

लो, युवराज का रथ आ रहा है । आज युवराज के चरण पकड़ूँ तो धूल में बिखरी सम्पदा को दोनों हाथों से बटोरूँ ।

(नेपथ्य की ओर देखकर और घबड़ा कर)

रथ के संग यम के दूत ये सैनिक भी भाले लिए आते हैं । यहीं कहीं छिप कर बैठूँ । (एक ओर छिप कर बैठ जाता है)

(दो युवा सैनिकों का प्रवेश)

संभाले हुए केश—प्रभावशाली मूँछें—मस्तक पर तिलक, वक्ष पर कवच और कलाइयों पर लौहबन्ध, लम्बे कुर्ते और चुस्त पाजामे पहिने हुए, हाथ में तीक्ष्ण भाले और कन्धे पर ढाल लटकी हुई है, कीतूहल से ऊपर अट्टालिकाओं की ओर देखते हुए आते हैं ।

पहला—आज कपिल का यह नगर कितना मनोरम है ! अपने जीवन में पहली बार राजलक्ष्मी का यह वैभव देख रहा हूँ । पुष्पमालाओं, बन्दनवारों और पताकाओं से सुसज्जित श्वेत और गुलाबी भवन, पुष्पों से भरा राजमार्ग, उत्सव-गान, ये स्वर्ण भांडधारी श्वेताश्व और अनेक सैन्य बाद्य ! सच, इन्द्रपुरी ऐसी ही होगी ।

(दूसरे की बांह झटक कर जो अभी ऊपर ही देख रहा है)

अरे सुना ?

दूसरा—तूने इन्द्रपुरी देखी होगी, मैंने नहीं देखी । यहाँ भी जो विशेष दर्शनीय है, उसे तू नहीं देख रहा । तेरी इन्द्रपुरी

अप्सराओं से शून्य है, यहाँ देख तो ।

(ऊपर अट्टालिकाओं की ओर दिखा कर) देव-विमान
सदृश इन अट्टालिकाओं को, दूर तक झरोखों पर देख ।
चंचल कुंडलों से दीप्त मुख कमलों को । कपोलों को
परस्पर जोड़ कर मुख ऐसे निकले रहे हैं जैसे तारक
खचित पारिजात—गुच्छ लटक रहे हों ।

पहला—हाँ, सचमुच, अरे यह तो अप्सराओं की प्रदर्शनी है ।
धन्य है इन स्त्रियों का रूप !

दूसरा—(नेपथ्य की ओर दिखा कर) वह सामने मार्ग पर
देख । कैसी आतुरता से ये युवतियाँ एक भवन से दूसरे
भवन को जा रही हैं ! इनके आभूषणों के शब्द से वृक्षों
के पक्षी उड़ रहे हैं ।

पहला—इनकी आतुरता भी रमणीय है ।

दूसरा—एक की करधनी गिर रही है—वह पीछे रह गई ।
वह दूसरी एक प्रौढ़ा को शीघ्रता करने को पीड़ित कर
रही है—वह विचारी शरीर भार से शीघ्र नहीं चल
सकती—उधर से सुन्दरियों का एक समूह और आया—
आहा इनका यह वेष !

दूसरा—अरे, तू तो पागल हो गया ! कुछ सुध है अपनी ?
श्रेष्ठी कुलों से निकल कर ये कुबड़े बौने और काले दास
एकत्र हो रहे हैं । चलो इन्हें मार्ग से हटा दें ।

दूसरा—रहने दो इन्हें । युवराज का इनसे कुछ मनोरंजन ही
होगा । ये अत्यन्त वृद्ध या आतुर नहीं हैं ।

पहला—नहीं, यात्राधिकारी की आज्ञा है कि राजपथ पर

मुन्दर वेषधारी प्रसन्नमुख पुरवासी ही रहें । अन्य प्रजाजन विनयपूर्वक मार्ग से हटा दिये जायें । युवराज के सामने कोई ऐसा व्यक्ति न आये जिसे देख कर उनके मन में संवेग हो ।

दूसरा—कोई वृद्ध और कुरूप व्यक्ति युवराज के मन में संवेग उत्पन्न कर देगा, और यह देवों को चकित करने वाली अप्सरोपम प्रमदायें क्या निश्चेष्ट ही रहेंगी ?

पहला—ऐसा मत कह, ग्राम्यजनोचित तुच्छ आकर्षण महान् व्यक्ति को स्पर्श नहीं करते । युवराज के सौम्य गुणों से प्रभावित होकर कपिलवस्तु की स्त्रियाँ तो क्या देव-स्त्रियाँ भी उनकी वन्दना करेंगी, स्तुति करेंगी और निश्चय ही शुद्धभाव से उनकी दीर्घायु की कामना करेंगी ।

दूसरा—युवराज का दर्शन ऐसा ही है ।

पहला—सुना है राजकुमार स्त्रियों से अनुचित अनुराग नहीं करते और न उन पर क्रोध । वे धैर्यवान अपनी इन्द्रियों के स्वामी हैं और अपने सद्गुणों से अन्तःपुर वासी नर-नारियों के ऐसे ही स्वामी बने हैं जैसे नक्षत्रों का अधिपति चन्द्रमा । अपनी सुदीर्घ बाहु, विशाल वक्षस्थल और इन्द्रोपमशौर्य से स्वयं चक्रवर्ती राज्य के स्वामी बन सकते हैं ।

दूसरा—युवराज सा स्वामी पाकर हम भी धन्य हुये । परन्तु यह बता मित्र, महाराज ने दीन दुखी और वृद्धों को राजपथ से दूर रहने की आज्ञा क्यों दी ? बात कुछ विचित्र है ।

दूसरा—अरे तैने नहीं सुना । महाराज ज्योतिषियों की भविष्य वाणी से डरे हुये हैं । ज्योतिषियों ने कहा था कि ये दीन दुखियों को देखेंगे तो इनका मन उद्विग्न हो जायगा और वह घर छोड़ देंगे । इसीलिये तो युवराज को मन चाहा भ्रमण करने की आज्ञा नहीं है । जब से युवा हुये हैं आज पहली बार प्रजावलोकन को निकले हैं । इन्हें संसार के झंझटों से बिल्कुल दूर रक्खा है, तभी तो इन्द्र से शौर्यवान वे इतने सौम्य और कोमल हृदय भी हैं ।

(नेपथ्य में वाद्यनाद और जयजयकार होता है)

युवराज का रथ समीप आगया है । श्वेत अश्ववाला यह स्वर्ण रथ कैसा भव्य है ! युवराज तेज से दैदीप्यमान राजपथ को आलोकित करते, स्मित हास्य से प्रजाजन का अभिवादन स्वीकार करते कैसे विराजमान हैं ! चलो, आगे का मार्ग ठीक करें, फिर कहीं खड़े होकर युवराज का दर्शन करेंगे ।

(दोनों जाते हैं)

(युवराज सिद्धार्थ का प्रवेश)

सिद्धार्थ—(नेपथ्य की ओर मुड़कर) छन्दक, रथ वहीं रोक दो ।

(नेपथ्य से “जो आज्ञा” कह कर छन्दक का प्रवेश)

सिद्धार्थ—छन्न, जब महाराज को सभी लोगों ने उलाहना दिया कि महलों में सुख का जीवन बिताकर, प्रजा के सुख दुख से अनभिज्ञ और राजकाज से विरत सिद्धार्थ अपनी कला खो बैठेगा जैसे वन से प्रथक हुआ बन्दी सिंह अपने शौर्य को—युद्ध आने पर क्या होगा, तब कहीं नगर में आने की अनुमति मिली । यहाँ मुझे अपना पुन-

जन्म सा प्रतीत होता है ।

छन्दक—आयुष्मान, आपके यहाँ आने से प्रजाजन में कितना उल्लास है ! अपने युवराज को देखकर फूले नहीं समाते ।
(नेपथ्य से जयजयकार और पुष्पवृष्टि होती है)

देखिये युवराज, अट्टालिकाओं से स्त्री बच्चे पुष्प बरसा कर अपने युवराज का अभिनन्दन कर रहे हैं ।

सिद्धार्थ—मुझे प्रजा इतना चाहे और मैं महलों से बाहर आने का नाम न लूँ, अच्छी बात नहीं है । महाराज मुझे आने की आज्ञा नहीं देते थे ।

छन्दक—हाँ, युवराज, आपकी जन्मकुण्डली देखते समय ब्राह्मणों ने भविष्यवाणी की थी कि यदि यह बालक संसारी लोगों के दुख देखेगा तो विरक्त हो जायगा और बड़ा अनिष्ट होगा ।

सिद्धार्थ—(मुस्करा कर) अच्छा !

अनिष्ट कैसा और दुःख क्या ? यहाँ तो सभी बड़े सुखी हैं । पुरुषों के मुख प्रसन्नता से चमक रहे हैं । युवतियों ने शृङ्गार किये हैं । उनका रूप कैसा मनोहर है ! बालक कैसे उछल रहे हैं ! इन्हें यदि मैं देखता हूँ तो क्या अनिष्ट होता है ?

छन्दक—प्रभु, आप केवल सुख का ही अनुभव करते रहे हैं । यहाँ भी सर्वत्र आपको सुख दीखता है जैसे हिमशिखर परिवेष्टित मानसरोवरवासी हंस केवल परिपूर्ण निर्मल जलाशय देखता हो । निदाघ-तप्त सूखे सरो-वर भी हैं, यह वह नहीं जानता । सुन्दर कुसुम के तीव्र कण्टक का आपको पता नहीं है, सुन्दर हीरक के

हलाहल का अभी आपको अनुभव नहीं है । आपके सुखी प्रजाजन में भी कदाचित् ऐसे ही विपरीत तत्व का समावेश हो, परन्तु आप उसका अनुभव नहीं करते ।

सिद्धार्थ—तुम्हारा क्या आशय है—मैं नहीं समझा ।

छन्दक—यों समझ में कैसे आवे, यह तो अनुभव करने की बात है ।

सिद्धार्थ—तो तुम्हें वह अनुभव है क्योंकि तुम मेरी तरह महलों में बन्द नहीं रहे । अब मुझे भी वह अनुभव होगा । चलो आगे ।

(नेपथ्य में वाद्यनाद और जयजयकार)

(सामने देखकर और रुककर) छन्न, यह कौन पुरुष है ? इसके केश भी दूसरी प्रकार के हैं—औरों के समान नहीं हैं । अंग ढीले और आगे झुके हुये हैं !

छन्दक—(नेपथ्य की ओर दिखाकर जिधर भिक्षुक छिपा हुआ है)

युवराज, यह एक वृद्ध पुरुष है—अत्यन्त वृद्ध । यह इस संसार में बहुत वर्षों से रह रहा है । जब मनुष्य इतने वर्षों तक रह लेता है तो उसकी ऐसी ही दशा हो जाती है । देखिये, वह अपनी लाठी के सहारे इधर ही आ रहा है ।

(वृद्ध भिक्षुक का प्रवेश)

भिक्षुक—जय युवराज, भगवान भला करें युवराज ! मुझ दीन दुखी का कुछ उपकार करो । युवराज को देखा तो दौड़ कर आया हूँ । प्रभु, मेरे अब शक्ति नहीं है ।

सिद्धार्थ—(कुरुणा से उसके पास जाकर) तुम्हें क्या हो गया है ? तुम कौन हो ?

भिक्षुक—मैं दीन भिक्षुक हूँ युवराज ? इस नगर में भिक्षा

मांग कर पेट पालता हूँ । आज पचास वर्ष हो गये—
 मैं इस नगर को छोड़ कर नहीं गया । युवराज, जब
 आपका जन्म-उत्सव हुआ था तो मैं यहीं था । मुझे राज-
 महल से भोजन और वस्त्र मिले थे । आपको सुध नहीं
 होगी । बालक थे तब आप । बहुत बड़ा उत्सव था ।
 और हाँ, फिर धान के उत्सव में । राजकुमार छोटे से थे
 और छत्र के नीचे बैठे थे । मैं तब भली भाँति दौड़
 सकता था । मैंने आपको देखा था । आहा, कल की सी
 बात है ! कैसा मोहक रूप था ! आज कितने वर्ष बीत
 गए ! युवराज, बड़ी आशा से आया हूँ प्रभु !

(चरणों में मस्तक नवाता है)

सिद्धार्थ—(छन्दक से) क्या, यह फिर स्वस्थ नहीं हो सकता ?

हमारी तुम्हारी सी स्फूर्ति इसे फिर नहीं आ सकती ?

छन्दक—पहले यह भी बालक होगा, फिर युवा हुआ होगा—
 स्वस्थ और मुन्दर होगा । जरा ने इसकी शक्ति क्षीण
 कर दी है और इसका रूप हर लिया है । इसका जीवन
 स्रोत सूख रहा है ।

सिद्धार्थ—यह फिर युवा नहीं हो सकता ?

छन्दक— नहीं प्रभु, यौवन-काल जाकर फिर नहीं आता और
 वृद्धावस्था आकर फिर नहीं जाती ।

सिद्धार्थ—यह जरा का दोष संयोग से इसी को है या यह
 दोष सभी को होगा ?

छन्दक—आयुष्मन्, वृद्धावस्था कालक्रम से सभी मनुष्यों को
 अवश्य होगी—मुझे, आपको, सभी को ।

सिद्धार्थ—(लम्बी सांस लेकर चारों ओर कोलाहलपूर्ण जनता को देखने का नाट्य करते हुए) वृद्धावस्था के दोष को अवश्यम्भावी जानते हुए भी यह प्रजा इतनी प्रसन्न है !

भिक्षुक—(पेट पकड़ कर) आह, हे भगवान !

(पृथ्वी पर लेट जाता है)

सिद्धार्थ—(तत्परता से भिक्षुक को सहारा देकर) छन्न, इसे क्या हो गया ?

छन्दक—उदर शूल । युवराज, यह वृद्ध है । भाग कर आया है तो इसके उदर में कठिन पीड़ा होने लगी है ।

भिक्षुक—दया, राजकुमार ! मैं बहुत दुखी हूँ । आज कितने वर्ष बाद आपको देखा है । मैं अब अधिक दिन जीवित नहीं रहूँगा । मुझ में चलने फिरने की शक्ति नहीं है । मैं बहुत वृद्ध हूँ । दया करो, युवराज ! आह, हे भगवान !

(उठने का प्रयत्न करते हुए फिर गिर पड़ता है)

सिद्धार्थ—सौम्य छन्न, यह खड़ा नहीं हो सकता ! यह इतना दुखी क्यों है ? यह बार-बार उदर क्यों पकड़ता है ?

छन्दक—इसका नाम रोग है । युवराज, हम नहीं जानते कब कौन सा रोग हमें हो जायगा और हमें भी ऐसी ही पीड़ा होगी ।

सिद्धार्थ—क्या रोग का भय भी समान रूप से सभी प्राणियों को है ?

छन्दक—आयुष्मन्, शरीर का महाशत्रु यह रोग का दोष अत्यन्त साधारण बात है । सभी लोग इस दोष से पीड़ित होते हैं ।

सिद्धार्थ—(स्वगत) रोग रूपी महाविपत्ति को देखते हुए भी संसार निर्भीक है ! कैसा अज्ञान है यह प्रजा का ! (प्रगट छन्दक से) इसे मेरे रथ में सुला दो ।

(छन्दक भिक्षुक को सहारा देकर उठाता है और नेपथ्य के उस ओर ले जाता है जिधर से सिद्धार्थ और छन्दक ने प्रवेश किया था)

(स्वगत) अहो, धिक्कार है इस जन्म को जो जन्म लेने वाले को ऐसी वृद्धावस्था और रोग हो !

(नेपथ्य के दूसरी ओर दूर पर विलाप और हाहाकार सुनाई पड़ता है । सिद्धार्थ गंभीर मुद्रा से उसे सुनते और उधर देखते हैं)

(छन्दक का प्रवेश)

छन्दक—(स्वगत) आज निश्चय ही यह अपशकुन बुरे है । युवराज बड़े भावुक हैं । क्या ज्योतिषियों की वाणी सत्य होगी !

(प्रकट) युवराज उधर न देखें ।

सिद्धार्थ—परन्तु यह है क्या ? ये मनुष्य अपने कन्धे पर क्या लिए जा रहे हैं ?

छन्दक—(स्वगत) यह न बताऊंगा ।

(नेपथ्य में विलाप और हाहाकार फिर होता है)

सिद्धार्थ—बोलो छन्दक, ये मनुष्य क्या लिये जा रहे हैं ? जिस वस्तु को सजाया गया है, उसके लिये यह विलाप क्यों हो रहा है ? ये स्त्रियाँ केश बखेर कर क्यों विलाप करती दौड़ रही हैं ? इतना क्यों रो रही हैं ? जल्दी

बोलो छन्दक !

छन्दक—(स्वगत) न बताऊँ ! परन्तु कोई अज्ञात प्रेरणा मेरे हृदय को जैसे झकझोर रही है—कहती है, आज युवराज को सब कुछ समझा दे ।

(प्रगट) युवराज यह—(रुककर) यह शव है । मनुष्य का शव है, वह जिसे चार मनुष्य कंधों पर लिये जा रहे हैं ।

सिद्धार्थ—शव है ? परन्तु ये स्त्रियाँ रोती बिलखती, छाती पीटती क्यों उसके पीछे दौड़ रही हैं ? ओह, कैसा करुणोत्पादक दृश्य है ! ये स्त्रियाँ क्यों विलाप करती हैं ?

छन्दक—प्रभु, इनका कोई स्वजन मर गया है । उसके वियोग में रोती हैं । यह मृतक अब लौट कर नहीं आवेगा ।

सिद्धार्थ—क्यों ?

छन्दक—मर गया है । युवराज, जब शरीर से प्राण निकल जाते हैं तो यही दशा हो जाती है । सभी मनुष्य इस प्रकार एक दिन चले जायेंगे । यह मृत्यु है ।

सिद्धार्थ—मृतक फिर लौटकर नहीं आते ?

छन्दक—नहीं ।

सिद्धार्थ—कहाँ जाते हैं फिर ?

छन्दक—(व्यंगपूर्ण स्मित हास्य से) स्मशान को । जहाँ काष्ठ की चिता पर रखकर उनका दाह-संस्कार कर दिया जाता है ।

सिद्धार्थ—(पीड़ामय गंभीरता से) क्या सभी मनुष्यों की इसी प्रकार मृत्यु होगी ?

छन्दक—हाँ प्रभु, प्रकृति का यही नियम है ।

सिद्धार्थ—मृत्यु की विपत्ति भी हम सभी को होगी । हम भी ऐसे ही निश्चल मृतक होंगे और फिर चार मनुष्य हमें भी कन्धे पर उठाकर ले जायेंगे !

(गहरी सांस लेते हैं)

छन्दक—(स्वगत)—बुरा हुआ । युवराज के हृदय को मर्मान्तक वेदना हुई है । क्या करूँ ?

सिद्धार्थ—हमारे कुल की स्त्रियां बिलख-बिलख कर रोती रहेंगी, परन्तु हम उस शय्या से उठकर उन्हें सान्त्वना देने न आयेंगे !

छन्दक—युवराज, आगे चलिये । देखिये दूर पर ये बालिकायें आपके लिये पुष्पमाला लिये खड़ी हैं ।

सिद्धार्थ—हमारी माता, बहिनें, स्त्री, पुत्री, दासियाँ विलाप करती रह जायेंगी !

छन्दक—प्रभु, दुख में सभी रोते हैं ।

सिद्धार्थ—छन्दक, क्या यह सब अवश्यम्भावी है ?

छन्दक—मृत्यु से अधिक अवश्यम्भावी इस संसार में कुछ नहीं है ।

सिद्धार्थ—फिर उन विलाप करने वालियों का भी एक-एक करके यही अन्त होगा—सभी का । प्रियतमा यशोधरा, महाराज, मैं, तुम सभी एक दिन मृतक होंगे—ओह !
छन्दक , मेरा सिर घूम रहा है ।

छन्दक—(सिद्धार्थ को सम्हाल कर) युवराज दुखी न हों, इसका विचार छोड़ दें ।

सिद्धार्थ—क्या इस विपत्ति से बचने का कोई उपाय नहीं है ?

सभी जब चले जायेंगे फिर सुख कहाँ है ? यहाँ तो वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु का साम्राज्य है । और यही अवश्यम्भावी है । सुख तो सपना है । रोग वृद्धावस्था और मृत्यु से घिरा हुआ सुख तो केवल कल्पना है ।

(मस्तक पर हाथ फेरते हैं)

छन्दक—प्रभु, यहाँ से आगे चलिये ।

सिद्धार्थ—नहीं सारथि, अब आगे नहीं । रथ को लौटाओ । मेरे चारों ओर एक प्रकार का अन्धकार घिर रहा है । सुख की सारी कल्पनायें इस अतल अन्धकार में एक-एक करके विलीन हो रही हैं । मेरे हृदय में आज भयंकर हलचल है । मुझे शान्ति नहीं हो रही ।

(नेपथ्य के पीछे से)

शान्त परम माता भई, शान्त परम पितु होय,
शान्त परम स्त्री भई, रूपवन्त लखि तोय ।

(सिद्धार्थ ऊपर देखते हैं और एक स्त्री के हँसने का शब्द होता है)

छन्दक—युवराज, क्षत्रिय कन्या कृशागौतमी कोठे पर बैठी प्रेम का सन्देश दे रही है ।

सिद्धार्थ—यह कह रही है, मेरे रूप को देखकर माता-पिता और स्त्री का हृदय शान्त होता है । परन्तु महाविपत्ति में पड़ी इस भोली प्रजा को देखकर मेरा मन आज विषाद से परिपूर्ण है । मैं सोचता हूँ यह हृदय परम-शान्त कैसे हो सकता है ? हृदय की शान्ति प्राप्त करने में मुझे आज ही लग जाना चाहिये । इसीलिये यह कन्या मुझे प्रिय वचन

सुना रही है (गले से हार उतार कर) छन्दक, कृशा
गौतमी को यह हार दे दो ।

(छन्दक हार लेकर जाता है)

(स्वगत) रोग...वृद्धावस्था...और फिर मृत्यु ! मा की ममता,
पिता का स्नेह, स्त्री का प्रेम सभी मधुर बन्धन तब अनेक
कच्चे सूत्र हैं, जिनको लेकर यह प्राणिजगत इन प्रलयकारी
उन्मत्त गजेन्द्रों को बाँधने की आशा करता है । प्रजा का
अज्ञान है यह ! (हार्दिक व्यथा से नेत्र मूँद लेते हैं)

(एक सन्यासी सौम्यमुख वस्त्र से नीचे तक शरीर ढके हुये
और हाथ में भिक्षा पात्र लिये नेपथ्य के उस ओर से आकर
उपस्थित हो जाता है जिधर छन्दक गया है)

(सन्यासी को देख कर) आप कौन हैं ?

सन्यासी—सन्यासी हूँ ।

सिद्धार्थ—सन्यासी ! आपकी आकृति ऐसी निर्विकार और शान्त
है ! रोग, जरा और मृत्यु से आपको क्या भय नहीं है ?

सन्यासी—मैं जन्म-मरण से मुक्ति पाने के लिये सन्यासी हुआ
हूँ ! इस नाशवान जगत् में अक्षय शान्तपद को खोज
रहा हूँ । मेरे लिये अपना और पराया नहीं है । मेरे
अनुराग और द्वेष शान्त हैं ।

सिद्धार्थ—आपके स्वजन तो होंगे ?

सन्यासी—मैं परिवार विहीन और तृष्णा रहित हो विचरण
करता हूँ, मुझे मोह नहीं है ।

सिद्धार्थ—जीविका के लिये किसी कला या शिल्प का आधार
तो होगा ही ?

सन्यासी—भिक्षा से जो प्राप्त हो जाता है उसी को ग्रहण कर लेता हूँ । भोजन में रुचि और स्वाद त्याग चुका हूँ । मेरे अहंकार नहीं है । मेरा हृदय शान्त है ।

सिद्धार्थ—ओह ! धन्य हैं आप जिनका हृदय इतना शान्त है !
(सन्यासी जाता है । सिद्धार्थ उसे देखते रहते हैं)
(नेपथ्य से)

युवराज मेरे प्रेम पाश में फँसे हो ?

सिद्धार्थ—(ऊपर देख कर) भगिनी, यह द्वार तुम्हारी गुरु-दक्षिणा है ।

(छन्दक का प्रवेश)

चलो छन्दक, महलों को लौट चलो । देखो, वह सन्यासी इतने जन समूह में अनुत्सुक और शान्तगति से जा रहा । उसे अपने साथ लो ।

छन्दक—आइये युवराज !

(जिस ओर से आये थे उधर ही जाते हैं)

दूसरा दृश्य

राजमहल का मंत्रणा भवन। समय सूर्यास्त से कुछ पूर्व।
राजा शुद्धोधन राजकीय आसन पर विचार मग्न बैठे हैं।

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—देव, युवराज महाराज के दर्शन को आये हैं।

शुद्धोधन—बुलाओ युवराज को।

(राजा आसन से धीरे से उठते हैं। सिद्धार्थ का प्रवेश।
सिद्धार्थ पिता को प्रणाम करते हैं और राजा स्नेह से उनके
सिर पर हाथ फेर कर सिद्धार्थ का मस्तक सूँघता है)

स्वस्थ तो हो बेटा ! तुम पूर्ण युवावस्था में इतने गंभीर
क्यों हो ? सुना है आज एक वृद्ध भिक्षुक और एक मृतक
को देख कर ही तुम नगर भ्रमण से लौट आये। जिस
राजपुत्र को शीघ्र ही राज्य की रक्षा का भार सम्हालना
है, उसे इतनी भावुकता शोभा नहीं देती।

सिद्धार्थ—महाराज, मुझे आज्ञा दीजिये . . .

शुद्धोधन—बोलो बेटा, समान वयस मित्रों के साथ आखेट
को जाओगे ? किसी उद्यान में विहार करोगे ? इच्छा
हो तो सेनापति के साथ सीमान्त की रक्षा-व्यवस्था का
अवलोकन करो। तुम्हें यह सब शीघ्र ही समझना है और
तुम्हारा मनोरंज भी होगा। सब कुछ तुम्हारे लिये प्राप्य
है। बोलो।

सिद्धार्थ—महाराज, मुझे आज्ञा दीजिये परिव्राजक होने की—

मोक्ष के हेतु बन जाने की, हम सबों का वियोग निश्चित है ।

(राजा घबरा कर दोनों हाथों से सिद्धार्थ को पकड़ता है)

शुद्धोधन—बेटा, इस बुद्धि को रोको । अवस्था के अनुकूल बुद्धि सुख-समृद्धि-दायिनी होती है अन्यथा विनाश का कारण बनती है । बन जाने का समय तो मेरा है । इस राज्यलक्ष्मी को तुम्हारे हाथ सौंप कर ही मैं बन जा सकूंगा । पराक्रम से मुख न मोड़ो । अपने वृद्ध पिता को छोड़कर जाने से तो तुम अधर्म के भागी ही बनोगे । गृहस्थ धर्म में लगने का यह तुम्हारा उपयुक्त समय है । बन जाकर तप करने का नहीं है ।

सिद्धार्थ—महाराज, यदि आप मेरे जीवन को मृत्यु से बचा सकते हैं, मेरे सुन्दर स्वास्थ्य को रोग से मुक्त रख सकते हैं और मेरी युवावस्था की रुपहारिणी जरा से रक्षा कर सकते हैं तो मैं इनसे मुक्ति पाने के लिये अपना घर नहीं छोड़ूंगा ।

शुद्धोधन—सिद्धार्थ बेटा, यह कुसमय बुद्धि तुझे कैसे आई ! यह केवल शाक्य-कुल के उपहास का कारण बनेगी और कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होगा ।

(शिथिल होकर आसन पर फिर बैठते हैं)

सिद्धार्थ—महाराज, यदि यह संभव नहीं है तो मुझे परिव्राजक होने से न रोकिये । जब चारों ओर आग लग रही हो तो किसी को निकल जाने से रोकना उचित नहीं ।

शुद्धोधन—आज यदि तेरी मा होती !

सिद्धार्थ—सभी का वियोग सुनिश्चित है । मेरी जन्मदायिनी

माता मुझे क्यों छोड़ गई ? महाराज, आप भी मुझे एक दिन ऐसे ही छोड़ देंगे । हम सभी एक-एक करके बिछुड़ जायेंगे । फिर धर्म के लिये, इस सर्वव्यापी भय से मुक्ति पाने के लिये स्वयं पृथक् हो जाने में मैं दोष नहीं देखता ।
शुद्धोधन—(गंभीरता से) तुम कदापि नहीं जाओगे ।

(सिद्धार्थ नेत्र बन्द करके स्थिर खड़े होते हैं और फिर मस्तक नवाकर धीरे से लौट जाते हैं । शुद्धोधन चिन्तावेग से टहलने लगते हैं)

इसको अपनी मा की स्मृति है । “मेरी जन्मदायिनी मुझे क्यों छोड़ गई ।” मैं क्या उत्तर दूँ इसे ! (आकाश की ओर देख कर) देवी महामाया, तुमने जिस विचित्र पुत्र को जन्म दिया, वह पूछ रहा है—तुम उसे क्यों छोड़ गईं । उत्तर दो । इस विलक्षण पुत्र का जन्म देखकर तुम और मैं बड़े आनन्दित हुए थे, और भयभीत भी । यह अति महान होगा—सम्राट या सन्यासी । कौन चाहता है कि यह सन्यासी हो ! इस भावी महान की प्रसवपीड़ा तुम न सह सकों । मैं अकेला आज व्याकुल हूँ । वह आशंका स्वप्न-पिशाचिनी की तरह शनैः शनैः परन्तु सत्य ही मेरे निकट आ चुकी है । देवि, अनुनय करो आकाश के देवों की—वे तुम्हारे इस पुत्र की बुद्धि को रोकें ।

(दोनों हाथों से सिर थामते हैं)

प्रहरी !

(प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—देव, आज्ञा कीजिये ।

शुद्धोधन—कुमार के पीछे जाओ और देखो वे कहाँ जाते हैं ।
 अविलम्ब समाचार देना ।

प्रहरी—जो आज्ञा महाराज ! (जाता है)

(वृद्ध मंत्री का प्रवेश)

शुद्धोधन—आओ मंत्री ।

मंत्री—महाराज की जय हो । महाराज स्वस्थ तो हैं ?

शुद्धोधन—विचित्र बात है मंत्री ! एक साधारण सी राजाज्ञा की अवहेलना हुई ! राजपथ की देखभाल पर किसे नियुक्त किया था ?

मंत्री—आवश्यक सैनिकों के साथ उप-सेनापति को ।

शुद्धोधन—कैसे यह वृद्ध भिक्षुक युवराज के समीप पहुँचा ?

मंत्री—केवल छन्दक सारथी ही इस बात को कहता है, और कोई प्रमाण नहीं मिलता । सहस्रों नर-नारी वहाँ थे, किसी ने उसको नहीं देखा ।

शुद्धोधन—विचित्र ! छन्दक असत्य कहता है ? क्या वह आकाश मार्ग से आया था ? और मृतक भी आकाश में दिखाई दिया था ?

मंत्री—महाराज, अभी इस घटना के पूर्ण रहस्य का पता नहीं चला । मृतक और उसके वाहक और फिर विलाप करती स्त्रियाँ क्या इतने जन-समूह के दृष्टिगोचर न होते ? फिर भी छन्दक के अतिरिक्त और कोई इस घटना को प्रमाणित नहीं करता । स्वयं मेरे लिए यह एक बड़ा रहस्य है और मैं अविलम्ब उचित परिणाम को महाराज के सम्मुख प्रस्तुत करूँगा ।

शुद्धोधन—परिणाम तो सम्मुख है मंत्री ! सिद्धार्थ गृह त्याग कर बन जाना चाहता है । सारा भविष्य अंधकारमय

हो जायगा । तुम देखते हो मैं वृद्ध हो चला हूँ । युवराज के चले जाने से मेरी कमर टूट जायगी । इस राज्य को कौन सँभालेगा, बोलो ?

मन्त्री—युवराज को रोकने के आपने भरसक प्रयत्न किये हैं । महाराज ! यदि भवितव्यता यही है कि युवराज गृह त्याग कर सन्यास लें और बुद्ध होकर संसार का उपकार करें तो कौन जाने । उन्हें सदा के लिए महलों में बन्द नहीं रखा जा सकता ।

शुद्धोधन—यदि वह थोड़े दिन और रोका जा सके तो फिर चिन्ता न रहेगी । ज्योतिषियों ने कहा था—विवाह के उपरान्त यदि बारह वर्ष तक सिद्धार्थ घर न छोड़े तो वह एक चक्रवर्ती राजा होगा—ऐसा प्रतापी जो दस सहस्र वर्षों में एक ही बार जन्म लेता है । और यदि वह बारह वर्ष व्यतीत होने से पूर्व ही घर छोड़ दे तो एक अपूर्व महात्मा होगा । यह बारहवाँ वर्ष है । मैं नहीं चाहता कि मेरा एक मात्र उत्तराधिकारी एक सन्यासी हो । कुछ भी हो, उसे कुछ दिन और रोकना ही होगा ।

मन्त्री—महाराज.....

शुद्धोधन—हाँ, बोलो, रुक क्यों गये ?

मन्त्री—मैं बहुत समय से यह सोच रहा हूँ कि युवराज का भविष्य उज्ज्वल होता दिखाई नहीं देता । महलों में बन्द रह कर कोई चक्रवर्ती नहीं होता । यदि महाराज भी अन्तःपुर के रंगीन वातावरण में रमे रहते तो क्या राज्य की रक्षा कर सकते थे ? मैं बहुत समय से यही

सोच रहा हूँ ।

शुद्धोधन—सिद्धार्थ बड़ा वीर परन्तु सरल चित्त है । किसी का थोड़ा दुःख भी उसे व्यथित कर देता है । उसे आखेट तक से अरुचि है । परन्तु राज्य भार ! हाँ, वह तो कठोर हृदय के लिए ही है । मैं क्या करूँ मंत्री, तुम मृत्यु कहते हो ।

मं —राज्य के एक मात्र उत्तराधिकारी का यों महलों में बन्द रहना अनिष्ट का सूचक है । महाराज, इस प्रकार चक्रवर्ती होना तो दूर रहा, राज्य की रक्षा करना भी दुर्लभ हो जायगा । ज्योतिषियों ने कुछ भी कहा हो, परन्तु अनुभव कुछ और ही कहता है । राज्य की चिन्ता से महाराज के बाल झेत्त हो गये हैं । महाराज की सेवा में मेरा सारा जीवन व्यतीत हुआ है और आप इस सेवक की मंत्रणा को सदा ध्यानपूर्वक सुनते आये हैं । महाराज, युवराज को जीवन-संग्राम में आने दीजिये । इसी में कल्याण है ।

शुद्धोधन—परन्तु वह वचन से ही बड़ा कोमल हृदय है ।

मंत्री—उनके विशाल मस्तक पर एक तेज भी है जो उनकी बालकों जैसी सौम्यता से मिल कर प्रखरता नहीं पा रहा है । उन्हें थोड़ा कठोर बन जाने का अवकाश दीजिये ।

शुद्धोधन—परन्तु कैसे ? तुम देखते हो वह एक रोगी भिक्षुक और एक शव को देखकर अन्यमनस्क हो गया और नगर भ्रमण से लौट आया, और अब वैराग्य से अभिभूत प्रतीत होता है ।

मंत्री—अब तो यशोधरा के एक पुत्र भी हो चुका है । महाराज विश्वास रखें युवराज बालक का मोह त्याग कर सन्यास न ले सकेंगे । यशोधरा से भी उन्हें कितना प्रेम है !

शुद्धोधन—मैं केवल यही चाहता हूँ कि यह बारहवाँ वर्ष सकुशल व्यतीत हो जाय, फिर चिन्ता न रहेगी । न जाने क्यों एक अस्पष्ट आशंका से मेरा मन उद्विग्न हो उठता है । इस वर्ष तो अभी उसकी सम्हाल रखनी पड़ेगी ।

मंत्री—तो फिर चिन्ता न करें महाराज । युवराज को मैं समझा लूँगा, और यदि वे सन्यास मार्ग पर ही प्रवृत्त होते दीखे तो दूसरा उपाय है ।

शुद्धोधन—वह क्या ?

मंत्री—उन्हें बलपूर्वक भी रोका जा सकता है ।

(प्रहरी का प्रवेश)

शुद्धोधन—बोलो, युवराज का क्या समाचार है ? इस समय कहाँ हैं ?

प्रहरी—पावस महल के उद्यान में बैठे हैं । एक सन्यासी से बातें कर रहे हैं । एक भिक्षुक उनके पास है, जिसे वे नगर से अपने साथ ले आये थे ।

शुद्धोधन—सन्यासी और भिक्षुक ! युवराज के पावस महल में घुसने की उन्हें किसने आज्ञा दी है ?

प्रहरी—स्वयं युवराज ने ।

शुद्धोधन—हूँ । अच्छा उन दोनों को अभी राज्य की सीमा के बाहर करवा दो ।

(मंत्री से) देखते हो, अनिष्ट होना ही चाहता है । बल-

पूर्वक ही रोकना होगा । देखो, नगर-द्वारों पर और सिद्धार्थ के महल पर पहरा कड़ा कर दो । थोड़े से सैनिकों को नगर में घूम-घूम कर पहरा देने दो । सेनापति से कहो नगर के पूर्वी द्वार का विशेष प्रबन्ध करे । जाओ मंत्री, यह सब प्रबन्ध करो । मैं उसे सन्यासी बन कर न जाने दूंगा ।

मंत्री—(स्वगत) कुछ समझ में नहीं आता । (प्रगट) जो आज्ञा । (जाता है)

शुद्धोधन—(उठ कर स्वगत) मैं कदापि न जाने दूंगा । निर्मोही, तू मुझे छोड़ सकता है, परन्तु अपने अबोध सुकुमार बालक को और अपनी निर्दोष स्त्री को कैसे छोड़ जायगा ! जैसी ममता मातापिता को अपनी सन्तान की होती है, यदि वैसी सन्तान को अपने पिता से होती ! माता पिता जब वृद्ध हो जाते हैं, तो सन्तान से आशा करते हैं कि वृद्धावस्था में उन्हें सुख और सान्त्वना दें । परन्तु मैं कितना अभागा हूँ कि इस अवस्था में भी सन्तान की चिन्ता से दग्ध हो रहा हूँ ।

(दुखी होकर शनैः-शनैः एक ओर जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—सिद्धार्थ का शयन कक्ष । दीपकों का प्रकाश । सिद्धार्थ पलंग पर बैठे कुछ सोच रहे हैं । नेपथ्य में धीमी मधुर संगीत ध्वनि हो रही है । सिद्धार्थ तकिये पर माथा टेक कर आधे लेट जाते हैं और संगीत समाप्त हो जाता है । समय अर्ध-रात्रि से पूर्व ।

सिद्धार्थ—(धीरे पलंग से उठ कर और नेपथ्य की एक ओर झांक कर) सब सो गये हैं । गायिकायें जहाँ बैठी संगीत के स्वर निकाल रही थीं, वहीं पड़ कर सो गई हैं । हाथ अभी बाजों पर ही रखे हैं । (फिर देख कर घृणा से मुंह फेरते हैं)

छिः कोई बर्बाद रही है, किसी के मुंह से कफ निकल रहा है, कोई दांत कटकटा रही है, किसी का शरीर लार से भीग रहा है । किसी का वस्त्र शरीर से हट गया है ! कैसा घृणित दृश्य है यह ! इन्द्रभवन सदृश यह महल रौरव स्मशान की भांति मालूम होता है—नाना प्रकार की लाशों से परिपूर्ण ।

(उठ कर बाहर झांकते हैं)

स्वच्छ आकाश से पूर्ण चन्द्र अपना शीतल स्निग्ध प्रकाश फैला कर कोलाहल पूर्ण दिवस-चर्या से क्लान्त जगत को सुला रहा है जैसे माता अपने दिन भर क्रीड़ा करने वाले पुत्र को । सारा संसार सो रहा है । मैं नहीं सो सकता । हाँ, अब नहीं सो सकता । रोग वृद्धावस्था और मृत्यु मेरी और पैशाचिक

दृष्टि लगाये बैठे हैं। सो जाऊँ तो अनर्थ होगा। इन महा-विपत्तियों से बचने का उपाय निकले तभी सो सकूँगा। जन्म में यदि रोग, जरा, मृत्यु के दोष अवश्यम्भावी हैं, तो इस जन्म से मुक्ति देखना ही मेरा लक्ष्य होना चाहिये। प्राणिजगत इनके कुचक्र में पिस रहा है और दीन होकर विलाप करता है। मुझे एक महाप्रयत्न में लग कर मुक्ति का उपाय ढूँढना उचित है। अब मेरा यही निश्चय है। कोई बन्धन अब मुझे इस मार्ग पर अग्रसर होने से नहीं रोकेंगे। मैं आज ही यहाँ से निष्क्रमण करूँगा। इस निश्चय में अब मेरे हृदय को सन्तोष है। (चारों ओर दृष्टिपात करके) अर्धरात्रि की नीरवता ने सब को अचेत कर दिया है। इसी समय जाना उचित है।

(नेपथ्य के पास जाकर)

कौन है यहाँ ?

छन्दक—(नेपथ्य से) युवराज, मैं छन्दक हूँ।

(आँख मीड़ते हुये छन्दक का प्रवेश)

सिद्धार्थ—मेरे लिये एक घोड़ा तैयार करो—मैं आज निष्क्रमण करूँगा।

छन्दक—अर्ध रात्रि में जायेंगे, युवराज ?

सिद्धार्थ—हाँ अभी जाऊँगा। घोड़ा तैयार करो।

छन्दक—महाराज ने महल-द्वार पर आज विशेष सैनिक रख दिये हैं, नगर की सड़कों पर सेना पहरा दे रही है, नगर द्वारों पर भी प्रहरी खड़े हैं—आप इस समय न जा सकेंगे युवराज !

सिद्धार्थ—मुझे यह बन्धन नहीं रोक सकेंगे। यह

जानते । जाओ घोड़ा तैयार करो । अरे, खड़े हो ?

छन्दक—युवराज—”

सिद्धार्थ—मेरी आज्ञा मानों छन्दक ! जाओ ।

(छन्दक जाता है)

(कुछ सोचकर) यशोधरा से मिल चलूं । छोटे बालक को एक बार देख लूं ।

(नेपथ्य के दूसरी ओर जाकर द्वार खोलते हैं और एक टक देखते हैं)

देवी सो रही है ! तकिये पर कोमल कपोल रख कर निश्चिन्त सो रही है ! कितनी कोमल—कितनी सुन्दर है यह ! परन्तु एक दिन यह भी वृद्धा हो जायगी । काले सुन्दर केश पाश मूखकर रखे और श्वेत हो जायेंगे । मुख की यह शोभा, रूप-लावण्य सब लोप हो जायगा, और मुख पर जीवन जंजाल का प्रतीक रेखा—जाल अंकित हो जायगा । युवा-वस्था का यह कान्तिपूर्ण मुण्ड शरीर चर्मचढ़ा दयनीय कंकाल मात्र रह जायगा ! और फिर उस कंकाल को भी एक दिन चार मनुष्य कंधे पर उठाकर ले जायेंगे ! हाय यशोधरा, तू इतनी निश्चिन्त है ! (सोचकर) देवी को जगा दू और अन्तिम विदा ले लूं । नहीं ! यह कदापि न जाने देगी । अपने बाहुपाश से मुझे जकड़ कर रुदन मचावेगी और सब को जगा देगी । तब सोने दो इसे । नव-जात राहुल को मैंने स्पर्श भी नहीं किया है, उसे एक बार गोद में लेकर देखूं । (भीतर जाकर लौटते हैं) कैसी ममता है इसकी ! नींद में भी हाथ बालक के सिर पर रक्खा है । हाथ हटाऊं तो यह जग जायगी । अच्छा, न सही,

जाने से पूर्व इन दोनों को एक बार जी भर कर देख लूँ ।

(फिर देखते हैं)

मेरी प्रिय, मेरे निष्क्रमण के पश्चात् तुम मुझे निष्ठुर पुकार-पुकार कर रुदन न करना और पूर्व-प्रेम की बातों को याद करके विलाप न करना । मैं जीवन में रोग, जरा और मृत्यु देखकर अत्यन्त पीड़ित हूँ जैसे शक्तिशाली शत्रु सेना से घिर कर एक राजा पीड़ित हो । शत्रु पर बिना विजय पाये मेरा और तुम्हारा सुख कहाँ ! मेरा आलस्य विनाशकारी होगा और मुझे तुरन्त प्रयत्न करना उचित है । जीवन के इन महा शत्रुओं से युद्ध करने को आज मैं अकेला ही जा रहा हूँ । सफल हुआ तो मेरा तुम्हारा और सारी प्रजा का कल्याण होगा और मैं विजयोल्लास से पूर्ण हृदय लेकर तुम्हारे पास लौटूंगा । और यदि, यशोधरा, मैं इस प्रयत्न में नष्ट हुआ तो भी तुम मेरे लिए शोक न करना क्योंकि मेरी वीर-गति होगी । फिर सबका वियोग निश्चित भी है ।

आज जब मैं इस समय जा रहा हूँ, तुम और राहुल स्वप्न लोक में सुख से बिहर रहे हो और उन अमंगलकारी शत्रुओं को नहीं देख रहे हो जो सुख को अनायास ही छीन कर जीवन को निष्प्रयोजन कर देते हैं । मैं जागरूक उन्हें देख रहा हूँ और अपने और तुम्हारे मंगल के लिए महायुद्ध करने तुम से बिना पूछे ही निकल कर जा रहा हूँ । तुम्हारी मंगलकामना सदा मेरे हृदय में बसेगी ।

(करुणा से स्थिर और झुके नेत्रों से एकटक देख कर शनैः शनैः बाहर जाते हैं)

चौथा दृश्य

स्थान वन—एक नदी का किनारा, समय अर्ध रात्रि से
कुछ अधिक । (सिद्धार्थ का प्रवेश)

सिद्धार्थ—(नेपथ्य की ओर मुड़ कर) घोड़े को वहीं वृक्ष से
बाँध दो ।

(स्वगत) अब छन्दक को यहाँ से लौटा दूँ और मैं अभी
इस नदी को पार कर जाऊँ । बस यही ठीक है ।

(छन्दक का प्रवेश)

छन्दक—आश्चर्य !

सिद्धार्थ—कैसा आश्चर्य ?

छन्दक—युवराज यहाँ तक आ गये और संसार अचेत पड़ा
सोता रहा ! महल के प्रहरी, राजमार्ग के सैनिक और
नगर कोट के रक्षक मानों सब किसी ने अचेत कर दिये
थे । आप को न किसी ने देखा और न रोका । आकाश
कुछ समय पूर्व स्वच्छ था, कैसी निर्मल चाँदनी फैल रही
थी ! फिर ये मेघ कहाँ से आ गये, जिन्होंने चन्द्रमा पर
काला आवरण डाल दिया और आपके मार्ग को सबकी
दृष्टि से ओझल कर दिया ! मार्ग में यह फूल किसने
बिछाये, जो कन्थक के चलने का शब्द तक न हुआ ! यह
अश्व कन्थक कैसा पवन वेग से कुछ ही क्षण में यहाँ तक
आ गया ! मैं यद्यपि घोड़े के साथ दौड़ा हूँ परन्तु ऐसा
प्रतीत होता है कि वायु मुझे कन्थक के साथ उड़ा लाई

है और मैंने कोई श्रम नहीं किया । यह सब कैसे हुआ ?
बड़ा आश्चर्य है ! अवश्य ही कोई दैवी शक्ति अपना
काम कर रही है ।

सिद्धार्थ—छन्दक !

छन्दक—प्रभु !

सिद्धार्थ—अब तुम यहाँ से लौट जाओ और घोड़े को अपने
साथ ले जाओ ।

छन्दक—और आप स्वामी ?

सिद्धार्थ—मैं अब लौट कर न जाऊँगा । आज मैंने घर त्याग
कर सन्यास ले लिया है ।

छन्दक—प्रभु अनर्थ न करें । मैं युवराज को अकेला छोड़कर
कदापि न जाऊँगा ।

सिद्धार्थ—प्रियवर, जिस कल्याणकारी मार्ग में मैंने पदार्पण
किया है, उसमें बाधा न डालो । कपिलवस्तु को लौट
जाओ । अब मेरी यह अन्तिम आज्ञा है, इसे और मानो ।

छन्दक—स्वामी यदि आज्ञा दें तो अभी इन प्राणों को त्याग
दूँ, परन्तु इन चरणों को छोड़ कर यों न जाऊँगा । युव-
राज ! आप यदि न लौटेंगे तो मैं आपके साथ ही रहूँगा ।

सिद्धार्थ—मेरे साथ कहाँ जाओगे, छन्दक ?

छन्दक—जहाँ यह चरण जायेंगे, वहाँ यह सेवक जायगा ।

(चरण पकड़ता है)

मैं अकेला राजधानी में लौट कर कैसे मुंह दिखाऊँगा ?

सिद्धार्थ—यहाँ से आगे मैं अकेला ही जाना चाहता हूँ । मेरे
साथ यहाँ तक आने से तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो गया ।

तुम न लौटोगे तो महलों में अनर्थ हो जायगा । महाराज को मेरे वचन से आरोग्य कहना और निवेदन करना कि तुम्हारा सिद्धार्थ इस राज्य को छोड़ कर एक ऐसे राज्य की प्राप्ति के लिये गया है, जहाँ संसार का कोई दुःख न होगा । मेरे लिये शोक न करें और नन्द को युवराज बना कर पुत्रवान होने का सन्तोष पावें । मेरे प्रति अपना स्नेह छोड़ें । यशोधरा को मैं सुप्तावस्था में छोड़ कर आया हूँ । मैंने उमे नहीं जगाया । वह अधिक दुखी होती और मुझ निर्मम को न रोक सकती । उसको मेरे वचन से सन्तोष देना और कहना कि तुम्हारा सिद्धार्थ अपने और तुम्हारे सभी दुःखों के दूर करने का उपाय ढूँढ कर तुम्हारे पास लौटगा । शोक न करें । छन्दक, यथा संभव सबको सान्त्वना देना । मैं सफल होकर ही लौट कर सबसे मिलूँगा ।

छन्दक—स्वामिन् ? (रोने लगता है)

सिद्धार्थ—रोते हो छन्दक ! मूर्ख हुये हो ! तुमने ही मेरे सुप्त हृदय को चेतना प्रदान की । मैं विलासता में बह जाता, तुम्हारे ही शब्दों ने मुझे स्फुरणा दी । तुम्हारे वचन एक दैवी प्रेरणा की तरह मुझे इस मार्ग में ले आये । क्यों छन्दक, एक दिन सभी प्रियजनों से वियोग होता है, हम सभी को संसार छोड़कर चला जाना है—तुमने ही कहा था न ? फिर अब शोक क्यों करते हो ? मैं इस महा विपत्ति से बचने का उपाय खोजने आज इस अर्ध रात्रि में अकेला निकाल हूँ । मेरा निश्चय दृढ़ है । मैं अपने

प्रयत्न में या तो सफल होकर आऊँगा या अपना ही अन्त कर दूँगा । मैं अपने तथा स्वजन के जीवन को रोग, जरा, और मृत्यु द्वारा जर्जरित होकर भूल में मिलते हुये मूक दीन होकर नहीं देख सकता । इसलिये प्रियवर, मुझे जाने दो ।

छन्दक—(चरण पकड़ कर और रोकर) मैं स्वामी को छोड़ कर कैसे जाऊँ ! राजमहल का हाहाकार में कैसे देखूँगा ! देवी यशोधरा के प्रति मेरा यह शत्रुतापूर्ण कार्य ही होगा कि मैं युवराज को महलों से निकाल कर निर्जन बन में छोड़कर लौट गया । मैं किसी को क्या उत्तर दूँगा ! स्वयं दोषी होकर किसको सान्त्वना दे सकूँगा ! राजकुल पर महाविपत्ति लाने वाले मुझको कौन क्षमा करेगा ! स्वामिन् ! मुझ सेवक पर प्रसन्न होइये और राजधानी को लौटिये ।

(नेपथ्य से कंथक के हिनहिनाने का शब्द होता है)

यह कंथक भी पृथ्वी को खुरों से खोद रहा है; कान खड़े कर इधर देखता अपने जबड़ों से शब्द कर रहा है और हिनहिना कर आपसे ऐसा निश्चय न करने की प्रार्थना कर रहा है । इतनी विस्तृत यात्रा के बाद भी यह स्वामी को राजधानी लौटा ले जाने को उद्यत खड़ा है । स्वामि भक्त कंथक भी आपका वियोग सहन नहीं करेगा ।

सिद्धार्थ—(नेपथ्य की ओर कंथक को सम्बोधित करते हुये) कंथक, तुम सदा मेरे प्रिय रहे हो । मुझे तुम्हारे बहुत उपकार याद हैं । आज रात की इस लम्बी यात्रा को

इनकी तीव्रगति से पूर्ण करने के लिये मैं तुम्हारा बड़ा अभारी हूँ । मेरी आज्ञा तुमने सदा सहर्ष मानी है । आज यह अन्तिम आज्ञा और मानों । छन्दक के साथ राजधानी को लौट जाओ—मेरे पीछे महाराज और छन्दक तुम्हें स्नेह से रखेंगे ।

(कंथक फिर हिनहिनाता है)

शान्त हो जाओ कंथक । मेरा निश्चय नहीं बदलेगा ।

(छन्दक से) विलम्ब होता है छन्दक, अब जाओ । मैं अपना निश्चय नहीं बदलूंगा, तुम नहीं समझते । (मुकुट उतार कर फेंकते हैं और खड्ग से अपने केश काट कर एक ओर फेंकते हुए) ये राजकुमारों के केश अब मुझे शोभा नहीं देंगे ।

(छन्दक आश्चर्य से आकाश में देखता है)

छन्दक—(पैरों पर गिर कर) मेरे प्रभु ! आपकी अद्भुत शक्ति देख कर मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है, परन्तु आपके निश्चय से मुझे धैर्य नहीं हो रहा ।

सिद्धार्थ—मुझे इस मार्ग पर जाने से विचलित न करो । तुम कंथक को साथ लेकर जाओ और यह मेरा खड्ग अपने साथ लेते जाओ (खड्ग देते हैं)

छन्दक—(खड्ग लेकर) मैं भाग्यहीन अब कैसे करूँगा !

(चरण छूकर आँख पोंछता हुआ जाता है । सिद्धार्थ कुछ क्षण तक उधर देखते हैं)

सिद्धार्थ—इस नदी को अभी रात्रि में पार करना ठीक होगा, फिर चिन्ता न रहेगी ।

(नेपथ्य के दूसरी ओर देख कर)

परन्तु यह कौन आता है ?

(भिक्षुक का प्रवेश)

भिक्षुक—(सिद्धार्थ को पहचान कर) अरे युवराज, तुमने मुझ दीन को कहीं का न रक्खा ! अपने रथ में बिठा कर राजमहल को ले गये थे, तो मैंने समझा आज मेरे भाग जागे । हाय, मिला तो कुछ नहीं, उल्टा राज्य से निकलवा दिया । संध्या से भूखा इस बन में भटक रहा हूँ । अब कहाँ जाऊँ ? कपिलवस्तु में पचास वर्ष से भिक्षा माँग कर पेट पालता था और कहीं पड़ कर सो रहता था । अब इस निर्जन बन में आ पड़ा हूँ । हाय; मैं कहीं का न रहा ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?

सिद्धार्थ—तुम ने कुछ नहीं बिगाड़ा । तुम दुखी क्यों होते हो ! तब कुछ नहीं मिला तो अब लो । तुम अपनी वृद्धावस्था को सुख से बिताना । (कुंडल और भुजबन्द उतार कर) ये लो ।

भिक्षुक—(विस्फारित नेत्रों से आभूषणों को देख कर) युवराज !

सिद्धार्थ—यह तुम्हारी वृद्धावस्था के लिये पर्याप्त हैं । सारे जीवन तुम हमारे नगर में भिक्षा माँगते रहे हो, अब तुम निश्चिन्त रहना ।

भिक्षुक—(आभूषण लेकर) यह क्या करते हो युवराज ?

सिद्धार्थ—(वस्त्र उतारते हुए) और ये वस्त्र भी लो । अब ये मेरे काम के नहीं हैं ।

भिक्षुक—वस्त्र क्यों उतार रहे हो ? आपका कोमल शरीर है, सरदी लग जायगी । मैं वस्त्र नहीं चाहता ।

सिद्धार्थ—ये वस्त्र अब मैं न पहनूंगा । तुम अपने वस्त्र मुझे दे दो, मैं उन्हें पहिन लूंगा । बोलो ।

भिक्षुक—मेरे वस्त्र ! हाय, तुम इन्हें न छूना । मेरे सारे जीवन की दरिद्रता इनमें भरी पड़ी है । क्या राजा से भिक्षुक बनोगे ?

सिद्धार्थ—मैं भिक्षुक से भी अधिक अकिंचन बनूंगा । राजा के चिन्ह ये आभूषण तुम्हें दे दिये, इन वस्त्रों को और लो । मुझे अपने वस्त्र दे दो ।

भिक्षुक—युवराज, मैं आजन्म भिक्षुक ही रहा हूँ, और संपदा के मुख-स्वप्न ने मुझसे सारे जीवन केवल चने बटोरवाये हैं । आज जब वह स्वप्न की संपदा मेरे हाथ में है तो मेरा क्षुद्र हृदय कम्पित हो रहा है । उसमें इतना बल नहीं कि इन राजसी वस्त्राभूषण के भार को सम्हाल सके । मुझे तो भय लगता है इनसे । तुम मेरे वस्त्र भले ही ले लो, मैं तुम्हारे वस्त्राभूषण न लूंगा ।

(सिद्धार्थ के वस्त्राभूषण पृथ्वी पर डालकर अपने वस्त्र उतार कर सिद्धार्थ को देता है)

सिद्धार्थ—(भिक्षुक के वस्त्र लेकर) ये वस्त्राभूषण उठा लो ।

भिक्षुक—महलों को छोड़ कर इस रात्रि में कहाँ जाओगे ?

सिद्धार्थ—ऐसा राज्य ढूँढने जहाँ कोई दुःख न हो । तुम ये वस्त्राभूषण लेकर जाओ । मैं जाता हूँ ।

(सिद्धार्थ नदी की ओर जाते हैं)

भिक्षुक—क्या रात्रि में नदी पार करोगे ?

(सिद्धार्थ नदी की ओर बढ़ते जाते हैं। चन्द्रमा स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है और नदी से संगीत की ध्वनि उठती है। भिक्षुक आश्चर्य से देखता और चिल्लाता है)

नदी में वर्षा का वेग है। युवराज उधर न जाओ, ओ-ओ- हाय !

(भिक्षुक दौड़ कर उधर जाता है)

(शुद्धोधन और दो सैनिकों का प्रवेश)

शुद्धोधन—यहाँ अभी मनुष्य की परछाईं दिखाई पड़ी थी।

नदी बड़े वेग से बह रही है। कोई मनुष्य इस समय पार करने का साहस नहीं कर सकता।

सैनिक—(पृथ्वी पर पड़े वस्त्राभूषण देख कर और पहचान कर)
परन्तु, महाराज, यह क्या ?

दूसरा सैनिक—अरे युवराज के वस्त्र ! हाय, अनर्थ !

(भिक्षुक लौट कर)

भिक्षुक—ये वस्त्राभूषण युवराज के हैं, वे अभी नदी में घुसे हैं।

(सैनिक भिक्षुक को पकड़ते हैं और शुद्धोधन नदी की ओर लपकते हैं)

शुद्धोधन—(चिल्लाकर) सिद्धार्थ ! सिद्धार्थ !! बेटा लौट आओ !!

(चेतना विहीन होकर गिर जाते हैं)

(पर्दा गिरता है)

दूसरा अंक

कुमार-प्रवास

बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित बनवास और अन्तः
पुर विलाप की घटनायें

पात्र

सिद्धार्थ—कपिलवस्तु के युवराज, भावी बुद्ध ।

शुद्धोधन—कपिलवस्तु के राजा, सिद्धार्थ के पिता ।

मंत्री—शुद्धोधन का मंत्री ।

राजगुरु—शुद्धोधन के पुरोहित

यशोधरा—सिद्धार्थ की पत्नी

गौतमी—सिद्धार्थ की मौसी, कपिलवस्तु की महारानी ।

मल्लिका—यशोधरा की दासी ।

१ प्रहरी और २ तपस्वी

पहला दृश्य

महाराज शुद्धोधन के अन्तःपुर का बाहरी चौक । सामने द्वारशाला (बरामदा) जिसमें सुन्दर स्तम्भों के बीच एक राजकीय आसन रखा है । आसन के पीछे एक द्वार है जो रनिवास में खुलता है । आँगन के दोनों पार्श्व में दो बड़े द्वार हैं । दक्षिण ओर के द्वार से राजमहल के मुख्य बड़े द्वार का मार्ग है और बाईं ओर के द्वार से राजकीय मन्दिर को जाने का मार्ग है । दक्षिण द्वार पर एक सशस्त्र प्रहरी मस्तक नवाए खड़ा है । समय प्रातः

(यशोधरा की दासी मल्लिका सामने रनिवास के द्वार से प्रवेश करके आँगन में आती है ।)

मल्लिका—(स्वगत) राजपुरोहित अभी मन्दिर से नहीं आये, तब तक इस प्रहरी से पूछूं । (प्रहरी के पास जाकर) युवराज या छन्दक का कोई समाचार आया ?

प्रहरी—नहीं देवी ! अभी तक कोई समाचार नहीं मिला ।

मल्लिका—आठ दिन होने को आए ! हे भगवान, कैसे होगी ! नगर का कुछ समाचार है ?

प्रहरी—नगरवासियों के सभी व्यापार बन्द हैं । लोगों की भीड़ व्यर्थ ही समाचार पूछती राजद्वार तक आकर लौट जाती है । नगर ऐसा हो रहा है जैसे शत्रु-सेना द्वारा लूटा गया हो । महाराज का स्वास्थ्य कैसा है देवी !

मल्लिका—महाराज पर यह वज्रपात हुआ है । इन्द्र से

तेजस्वी, पर्वत से धैर्यवान हमारे राष्ट्रपालक महाराज पुत्र-वियोग से ऐसे ही दुःखी हैं जैसे राम के वियोग में दशरथ हुए थे । राजगुरु से दीक्षा लेकर वे जप तथा मंगल हवन कर्म में ही अपना समय व्यतीत कर रहे हैं ।

प्रहरी—भगवान कल्याण करें—महाराज दीर्घजीवी हों ।

मल्लिका—मैंने सुना है मंत्री उन सैनिकों के लिए दंड की व्यवस्था कर रहे हैं जो उस अभागी रात को राजद्वार के प्रहरी नियुक्त थे ?

प्रहरी—देवी, राजद्वार के ही क्यों, राजपथ और नगर द्वार के सैनिक भी दण्ड के भागी हो सकते हैं । परन्तु क्या सभी अपने कर्तव्य को भूल गये थे ? अवश्य ही इस में रहस्य है ।

मल्लिका—सो क्या ?

प्रहरी—उस दिन संध्या से ही वायु बन्द थी और आषाढ़ की गर्मी व्याकुलता पैदा कर रही थी । परन्तु अर्ध-रात्रि से पूर्व कुछ ऐसी हवा चली जिसमें मानो मादकता मिली थी । सैनिक अपनी संज्ञा खोने लगे और फिर ऐसे अचेत हो गये जैसे मदिरा में डूब गये हों । उसी समय आकाश में घने मेघ घिरने लगे और कुछ समय के लिये पूर्णिमा की रात्रि कृष्णपक्ष की तरह अंधेरी हो गयी । अवश्य ही यह बड़ा आश्चर्य है । जान-बूझकर सभी सैनिक अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकते थे ।

मल्लिका—इस महाविपत्ति से सभी हतबुद्धि हो रहे हैं, कुछ समझ में नहीं आता ।

(राजगुरु पूजा के वस्त्र पहने, हाथ में जलपात्र लिये
मन्दिर मार्ग से आते हैं)

राजगुरु—ओ३म् शिवः, हरिः शिवः, ब्रह्मः शिवः देवाः शिवाः
(मल्लिका को देखकर) महारानी गौतमी कहाँ हैं
मल्लिके ! स्वस्थ तो हैं ?

मल्लिका—गुरुदेव प्रणाम ! गुरुदेव, महारानी गौतमी स्वस्थ
कैसे हों ? आप तो जानते हैं । महारानी महामाया कुमार
को शैशव में छोड़ कर ही स्वर्गवासिनी हुई थीं, तो
महारानी गौतमी ने ही कुमार को अपना पुत्र माना,
अपने ही वक्ष का दूध पिलाया, और कुमार का लालन
पालन किया । आज अब वे विह्वल होकर उन-उन स्थानों
पर जाती हैं, जहाँ युवराज बैठते थे, अंगलेप कराते थे,
जहाँ संगीत सुनते थे और जहाँ शयन करते थे । उनकी दशा
उस गाय की सी है जिसका वत्स खो गया हो और जो
व्याकुल होकर ठौर-ठौर सूँघती फिरती हो । मुझ से उनका
विलाप नहीं देखा जाता ।

(गद्गद् होकर आँसू पोंछती है)

राजगुरु—मल्लिके, अब आँसुओं को रोको । यहाँ सभी विलाप
करेंगे तो अनर्थ होगा । तुम चतुर और संगीत प्रवीणा
हो, यशोधरा की प्रिय सेविका हो । अपनी स्वामिनी की
सम्हाल रखना । शाक्य-कुल-प्रदीप कुमार राहुल अभी
शिशु है । उसका सब समय विचार रखना है । विपत्ति
वर्षा मेघों की तरह आती और चली जाती है, स्थायी
नहीं होती । धैर्य से काम लो ।

(रनिवास के द्वार की ओर देख कर)

कदाचित् प्रजापती गौतमी आ रही हैं । रनिवास की सौन्दर्यश्री रानी गौतमी विषाद से मलिन मुख केशपाश लटकाये सचमुच दयनीय हैं !

(गौतमी का प्रवेश । शिथिल होकर स्तम्भ के सहारे खड़ी होती है और मल्लिका जल्दी से सम्हालती है ।)

गौतमी—गुरुदेव, मुझ अभागी का प्रणाम स्वीकार कीजिये ।

राजगुरु—कल्याण हो महारानी ! शोक के बढ़ते प्रवाह को रोकिये । महारानी की ऐसी दशा देखकर रनिवास की अन्य स्त्रियों की क्या दशा होगी ! अपनी स्वामिनी के नेत्रों को अश्रुपूर्ण देखकर चारों ओर विलाप का प्रवाह उमड़ पड़ेगा जो शाक्य-कुल को डुबो देगा । तुम्हारा धैर्य इस विपत्ति में परम वांछित है । पुत्र-वियोग से जर्जरित महाराज को भी सान्त्वना दे सकती हो । इसलिये, महारानी, कुल के कल्याण के लिये अपने आँसुओं को रोको ।

गौतमी—किन्तु गुरुदेव, जब मैं कुमार के आसनों को सूना देखती हूँ, उसके वस्त्रों और आभूषणों को परित्यक्त देखती हूँ, यशोधरा को विह्वल निश्चेष्ट देखती हूँ जैसे विषम ज्वर से अभिमूत हो, तो मेरा धैर्य छूट जाता है । कुमार के बिना ये भवन सूने हैं जैसे सूर्य-ग्रहण में आकाश !

राजगुरु—दुख में धैर्य रखना ही उचित है । शाक्य-कुल की गौरवशालिनी पटरानी को धैर्य का परिचय देकर कुल की रक्षा करनी चाहिये । यह मन्त्रपूत जल ग्रहण करो, इससे

शान्ति मिलेगी । आचमन करो । (गौतमी करतल पर जल लेकर आचमन करती है) थोड़ा नेत्रों से लगाओ ।

(गौतमी उँगली भिगोकर नेत्रों से लगाती है)

गौतमी—यशोधरा को कौन सम्हाले ?

राजगुरु—लो, मल्लिका, यह जल युवराज्ञी यशोधरा के लिये ले जाओ । मेरे वचन से युवराज्ञी को आशीर्वाद कहना । इस जल का राहुल—माता स्वयं आचमन करें और कुमार राहुल के मस्तक से लगायें । यह ले जाओ ।

मल्लिका—जो आज्ञा ।

(जलपात्र श्रद्धा पूर्वक लेकर रनिवास-द्वार से जाती है)

गौतमी—(निश्वास छोड़कर) मुझे अपनी चिन्ता न होती, परन्तु महाराज के हृदय भार को कौन उतारे ! उनके झुके व्यथित नेत्र और एकान्तवास उनके हृदय में उठ रही शोक की आँधी को बता रहे हैं, जिसे वे बलात् रोके हुये हैं । उनका वृद्धावस्था का शरीर इस वज्रपात को कब तक सहन करेगा ?

राजगुरु—आसन पर विराजिये महारानी ! आपके गात विषाद से शिथिल हो रहे हैं । आप अपने धैर्य से महाराज के सन्ताप को भी शान्त कर सकती हैं, जैसे तप्त मरुस्थल को शीतल संध्या ।

(गौतमी आसन पर बैठती है)

पूर्व काल में भी माताओं को पुत्र शोक हुये हैं । राम के बनगमन पर कौशिल्या ने धैर्य रखा । लक्ष्मण की माता सुमित्रा ने भी पुत्र वियोग धैर्यपूर्वक सहन किया । राम

और लक्ष्मण अन्ततः एक दिन फिर मिले और उन्हें परम सुख का लाभ हुआ । युवराज का वियोग आज महारानी को व्याकुल कर रहा है, परन्तु युवराज एक दिन अवश्य फिर मिलेंगे और यह विषाद स्मरण की बात हो जायगी । युवराज का विरक्तिभाव तो सभी को विदित था ।

गौतमी—सब प्रकार के राजसी भोग उसके लिये उपलब्ध थे परन्तु कुमार का चित्त उनमें नहीं रमा । उसकी चित्त-वृत्ति से अन्तःपुर वासियों को कभी विस्मय और कभी विक्षोभ होता था । परन्तु वह इतना सरल, मृदुभाषी और सौम्य था, कि उसके मुख की एक स्मित हास्य रेखा सभी को अनायास प्रसन्न कर देती थी । उसकी गंभीरता को हाय, किसी ने न समझ पाया !

राजगुरु—असित मुनि ने तो पहले ही बता दिया था कि यह कुमार बुद्धत्व प्राप्त कर संसार सागर में डूब रही प्रजा को सद्धर्म की नौका प्रदान करेगा । यदि नियति यही है कि युवराज ऋषि के मार्ग पर चल कर संसार का कल्याण करें तो भी शोक करना उचित नहीं है ।

(मल्लिका रनिवास के द्वार से दौड़ कर आती है)

मल्लिका—महारानी, राजपथ के पूर्व में बड़ा कोलाहल हो रहा है, अनेक लोग उधर दौड़े चले जा रहे हैं । मैंने अभी यशोधरा देवी के शयन-कक्ष से देखा है, अवश्य ही उधर कुछ है ।

गौतमी—(तत्परता से उठ कर) तैने क्या देखा ? कुमार आ रहे हैं ! कंथक पर बैठे कुमार दिखाई दिये ? अरी बोल !

मल्लिका—उतनी दूर पर स्पष्ट दिखाई नहीं दिया । परन्तु
अवश्य ऐसा ही होगा । बड़ा कोलाहल हो रहा है ।

राजगुरु—(प्रहरी से) प्रहरी, मुख्य द्वार के ऊपर जाकर देखो
यह कोलाहल कैसा है ?

प्रहरी—जो आज्ञा (जाता है)

गौतमी—यदि कुमार आज आवें तो तू मुंहमांगा पावेगी ।
पहली सूचना देने से तू इसकी अधिकारिणी हुई । परन्तु
मेरा हृदय क्यों निकला पड़ता है ।

(दोनों हाथों से हृदय थामती हैं)

मल्लिका—महारानी स्वस्थ हों ! अवश्य ही कुमार आवेंगे और
हम सब का शोक दूर होगा । आसन पर विराजें ।

(गौतमी को आसन पर बैठा देती है)

(राजगुरु से) राजगुरु, विचारिये यह घड़ी शुभ है, युवराज
ही आ रहे हैं न ?

राजगुरु—अधीर न हो मल्लिके, जैसे दुःख में वैसे सुख में भी
धैर्य रखना उचित है ।

(कोलाहल सुनाई देता है)

अवश्य ही कुछ बात है । लोग राजमहल की ओर आ
रहे हैं ।

गौतमी—आ मल्लिका, आँगन के द्वार पर ही कुमार की
प्रतीक्षा करें ।

(आसन से उठती है । प्रहरी का प्रवेश)

प्रहरी—महारानी, सारथी छन्दक आता दिखाई दे रहा है ।
साथ में कन्थक है और पीछे एक बड़ा जन-समूह ।

गौतमी—(व्याकुल होकर) कन्थक पर कुमार नहीं हैं ?

प्रहरी—युवराज दिखाई नहीं पड़ रहे ।

राजगुरु—धैर्य से ठहरें महारानी, विचलित न हों ।

(घोड़े के हिनहिनाने का शब्द होता है और भवन के पक्षी शब्द करते हैं)

गौतमी—अवश्य ही कुमार आ गये । कन्थक का सुपरिचित शब्द मैं सुन रही हूँ । कुमार को जब वह अन्तःपुर को लाता था तो इसी प्रकार शब्द करता था । ये पक्षी भी इसी प्रकार बोलने लगते थे । जा मल्लिका, देख तो यशोधरा कहाँ है ।

(मल्लिका दौड़ कर अन्तःपुर में जाती है)

(राजगुरु और गौतमी उत्सुक हो द्वार पर दृष्टि लगाते हैं । प्रहरी मार्ग छोड़ कर एक ओर हट कर खड़ा होता है । छन्दक नतमस्तक हो प्रवेश करता है और प्रहरी के पास ही खड़ा हो जाता है)

गौतमी—छन्दक !

राजगुरु—छन्दक, कुमार कहाँ हैं ?

गौतमी—(छन्दक को चुप देखकर व्याकुल होती है) तू चुप क्यों है ! मेरा हृदय बैठता है । बता कुमार कहाँ है ?

राजगुरु—बोलो छन्दक, कुमार को कहाँ छोड़ा ?

छन्दक—(नीची दृष्टि से ही) गुरुदेव, मैंने कुमार को नहीं छोड़ा, उन्होंने ही मुझे और कन्थक को विलाप करता छोड़ दिया ।

गौतमी—अनर्थ । (मूर्छित होती है)

(यशोधरा तीव्रता से प्रवेश करती है। खुले हुये केश, रोष से विस्फारित आँखें, लम्बी श्वासों से हृदय भाग हिल रहा है। मल्लिका पीछे-पीछे पंखा करती आती है और गौतमी को मूर्छित देखकर उसका वायु से उपचार करने लगती है। यशोधरा छन्दक के सामने आकर रोष से उसे ताकती हुई खड़ी होती है। छन्दक मस्तक झुका कर भय प्रदर्शित करता है। एक क्षण की शान्ति)

यशोधरा—अनिष्ट की आशंका से मेरा मन काँप रहा है।

आर्य पुत्र को कहाँ छोड़ा ?

(छन्दक निश्चेष्ट है)

आर्यपुत्र और तुम साथ गये थे, तुम अकेले ही क्यों आये ?

(उच्च स्वर से) बोलो !

छन्दक—देवि ! (आँसू पोंछने लगता है)

यशोधरा—अरे क्रूर, इन आँसुओं को रोको ! मेरा सर्वस्व नाश करके अब रोते हो ! प्रसन्न होओ, तुम्हारा मन चीता हुआ। अब आँसू क्यों गिराते हो ! हम सब तुम्हें अपना प्रिय, हितैषी और आज्ञाकारी समझते थे। आज उसका यह परिणाम तुमने दिया ! तुम और कथक आर्य पुत्र के प्रिय थे। तुम दोनों उनको साथ ले गये थे। तुम लौट आये। क्या उनको लौटा कर नहीं ला सकते थे ! अब देखो अपनी करतूत का परिणाम ! इन्द्र से धीर और वीर स्वामी के होते हुए भी रनिवास की स्त्रियों का हाहाकार। छन्दक, यह शत्रुतापूर्ण काम करके तुम्हें क्या मिल गया ?

(छन्दक आँसू पोंछता है)

(यशोधरा गद्गद् होकर) रात में सोती हुई मुझ को छोड़ कर तुम चोर की तरह स्वामी को ले गये ! अनार्य, तुमने अबोध राहुल का भी विचार न किया ।

(दोनों हाथों से मुह ढक कर रोती है । गौतमी मूर्छा से उठ कर बैठती है और विलाप करती हुई यशोधरा को देखती है)

गौतमी—पुत्री गोपा, विलाप बन्द करो (राजगुरु से) गुरुदेव, यशोधरा को समझावें ।

राजगुरु—पुत्री, धैर्य रखो । तुम्हारा कोमल चित्त इतना विलाप सहन न कर सकेगा । आओ, सोचें आगे क्या कर्तव्य है ।

(घोड़े के हिनहिनाने का शब्द होता है)

यशोधरा—(सामने नेपथ्य की ओर देख कर) यह पापी कंथक अब कैसा हिनहिना रहा है ! और जब रात में स्वामी को ले गया था तो यह गूंगा हो गया था । यदि यह इसी प्रकार रात्रि में हिनहिनाता तो रनिवास में जाग पड़ जाती । अरे, निष्ठुर, तैने मुझ विवशा से कैसा प्रतिशोध किया जो मेरे सर्वस्व को चोर की तरह रात्रि में चुपचाप ले गया । तू युद्ध कलाविद अन्तःपुर का सदा प्रिय रहा है । जब स्वामी तुझे ले जाते थे तो तेरे मस्तक पर भी मैं तिलक लगाती थी । जब तू स्वामी को लेकर लौटता था तो मैं हरे तृण लिये तेरी प्रतीक्षा करती थी; तेरी ग्रीवा को स्नेह से स्पर्श करके तुझे पुचकारती थी । तू मेरे कंधे से अपना मस्तक लगाकर मेरा स्नेह स्वीकार करता

था । कंभक, मैंने स्वप्न में भी तुझ पर क्रोध नहीं किया । जब आर्य पुत्र विकाल में तेरे पास गये तो तू मूढ़ क्यों हो गया ! तू उस समय यह शब्द करता अथवा पृथ्वी पर खुरों को पटकता तो स्वामी न जा पाते । हाय, तुम दोनों शत्रु क्यों हो गये !

(फिर मुँह ढाँक कर रोती हैं)

(भवन के पक्षी चहकने लगते हैं)

तुम भी मंगल गाओ मेरे दुर्भाग्य पर भवन के पक्षियों, उस रात को तुम्हारे कंठ भी अवरुद्ध थे । तुम्हें भी मृत्यु सूँघ गई थी । मैं तुम सब से स्नेह करती थी । नित्य ही तुम्हारे पास आती थी । हाय, तुम सभी मेरे विरुद्ध षडयंत्र में एक हो गए !

उच्चस्वर से अब जी भर कर गाओ, मेरा स्वंस्व लूट कर मंगल मनाओ—

गौतमी—(उठ कर) चुप होजा मेरी पुत्री । ये पक्षी तेरे विलाप से व्याकुल होकर पुकार रहे हैं ।

(यशोधरा को स्नेह से आलिंगन करती हैं और यशोधरा दोनों भुजायें गौतमी के कण्ठ में डाल कर विह्वल होकर रोती हैं)

राजगुरु—(रोते हुए छन्दक से) बोलो छन्दक, चुप क्यों खड़े हो ?

छन्दक—(नतमस्तक हाथ जोड़ कर)

देवी यशोधरा, आप मुझ पर क्रोध न करें और न अश्व कंथक पर । युवराज के निष्क्रमण में किसी दैवी शक्ति

का हाथ है और उसी शक्ति ने मुझसे तथा कन्थक से बलात् यह अनिच्छित कार्य कराया है । मैं हाथ जोड़ कर विनय करता हूँ, सुनिये ।

(सब सुनते हैं)

युवराज ने रात्रि में मुझे जगा कर जब कन्थक को लाने की आज्ञा दी तो मैं मन्त्रमुग्ध सा उसे अश्वशाला से ले आया । उस समय महल के द्वार खुले पड़े थे और प्रहरी अचेत पड़े थे । अवश्य ही यह देवी का कार्य था । मार्ग में कन्थक के चलने का शब्द नहीं हुआ जैसे खुरों में पुष्प गुच्छ बंधे हों । नगर का पूर्वी द्वार भी खुला पड़ा था । मैं कन्थक के साथ ऐसे चला गया जैसे वायु मुझे उड़ाये लिए जा रहो हो । राजपथ के सैनिक, नगर-द्वार के रक्षक और और राजधानी के सहस्रों नर-नारी निद्रा से अचेत थे । किसी ने हमें नहीं देखा । इसे भी दैव विधान समझना चाहिये । युवराज ने मुकुट सहित अपना जूड़ा काट कर फेंका तो वह आकाश में उड़ गया प्रतीत हुआ । मैं विस्मयपूर्वक देखता रह गया । इसलिए देवी, युवराज के जाने में न मेरा दोष है और न कन्थक का ही वे दिव्य शक्ति से ही अन्तःपुर छोड़ कर गए । मैंने और कन्थक ने अपनी इच्छा से कुछ नहीं किया ।

(सब विस्मित होते हैं)

राजगुरु—कुमार मैं दिव्य लक्षण हैं यह तो सभी पंडितों ने बताया था । गौतमी, तुम्हें याद होगी, स्वयं असित मुनि उन लक्षणों को देख कर चकित हुए थे । अवश्य ही यह

अलौकिक घटना दैव प्रेरणा से ही हुई है । हमें शोक नहीं करना चाहिये ।

गौतमी—परन्तु मेरा सुकुमार पुत्र आश्रमवास के योग्य नहीं है । उसका चन्दनलेप से सुवासित कोमल शरीर बहुमूल्य, रेशमी वस्त्रों का अभ्यस्त है । वह मृदु पुष्पशय्या पर संगीतध्वनि से सोता और जागता था । वह कैसे एक वस्त्र बिछा कर कठोर पृथ्वी पर सोवेगा ! दिव्य तेज वाला, स्वर्ण की कान्ति वाला, विशाल वक्षस्थल वाला मेरा कुमार कैसे दीन होकर भिक्षा माँगेगा ! ऋतु के अनुकूल आहार बिहार वाला वह कैसे धूप और वर्षा को सहन करेगा ! गुरुदेव, कैसे !

(विह्वल होकर बैठ जाती है । मल्लिका सम्हालती है शुद्धोधन पूजा के वस्त्रों में मन्दिर-मार्ग से आते हैं ।

एक क्षण की शान्ति)

(शुद्धोधन को देखकर) महाराज, तुम्हारा पुत्र आश्रम-वासी हो गया !

(मुँह ढाँक कर रोती है)

शुद्धोधन—तो चलो, हम सब उसी आश्रम को चलें जहाँ कुमार है । श्रवण के माता-पिता पुत्र-वियोग में अपना जीवन न रख सके । दशरथ ने पुत्र-वियोग में अपने प्राणों की आहुति दे दी । हमारे भाग्य में भी ऐसा ही है । गौतमी, नियति बड़ी बलवान है । हमारे सारे प्रयत्न निष्फल हुए ! (छन्दक को देख कर) छन्दक, भयभीत न होओ, तुम्हारा इसमें दोष नहीं है ।

परन्तु यह बताओ हमारा प्रिय कुमार किस आश्रम में है ? हमारे प्राण उसके बिना अब नहीं रहेंगे ।

छन्दक—(हाथ जोड़ कर) देव.....

राजगुरु—महाराज, महाशैल की सी अपनी स्वाभाविक धीरता को न छोड़ें । पुत्री यशोधरा और महारानी गौतमी यहाँ हैं, उनका विचार करें ।

(मंत्री का दक्षिण द्वार से प्रवेश)

शुद्धोधन—मंत्री, शाक्यकुल डूब रहा है । तुम हमारे कुल के परम हितैषी और रक्षक रहे हो, जैसे माली अपने उद्यान का । आज इस कुल के विघटन को अपनी आँखों से देखो और शोक करो । सिद्धार्थ नहीं आया ! मेरा जीवन उसके बिना अब निष्प्रयोजन है । ओह, यह दिन कितना भयंकर है ! हमारे कुल की स्त्रियाँ विवश और शोकाभिभूत होकर पृथ्वी पर गिरें और हम अचेतन से इस दृश्य को अपनी आँखों से देखें ! अब सब समाप्त हुआ । वर्षा-कालीन नदी की तरह, जो अपने मार्ग के सुन्दर उद्यान को बहा ले जाती है, यह नियति का प्रबल प्रवाह हमारे कुल को बहाये ले जा रहा है । इसमें कुमार का भी क्या दोष है ! मंत्री, मुझे तो कुछ सूझ नहीं रहा । (स्तम्भ पकड़ कर खड़े होते हैं) । राजगुरु और गौतमी सम्हालते हैं । मल्लिका पंखे से उपचार करती है)

मंत्री—महाराज, प्रतापी इक्ष्वाकु के वंशज को इतनी अधीरता शोभा नहीं देती । आपको आँसू न बहाना चाहिये । हे नृपश्रेष्ठ, शोक छोड़िये और धैर्य धारण कीजिये ।

(गौतमी से) प्रजापती गौतमी, वीर-पत्नी और वीर-माता हैं आप, समयोचित आचरण करें। महाराज को आसन पर प्रतिष्ठित करें।

(गौतमी और राजगुरु सहारा देकर शुद्धोधन को आसन पर बैठाते हैं। गौतमी समीप खड़ी रहती है और राज-गुरु अपने स्थान पर लौट कर खड़े होते हैं।)

(यशोधरा से) पुत्री यशोधरा, शाक्य-वंश-वृक्ष के कोमल अंकुर की रक्षा करना तुम्हारा परम कर्तव्य है। सावधान !

(यशोधरा मुंह फेर कर आंसू पोंछती है)

(छन्दक से) सौम्य छन्न, युवराज का कोई सन्देश लाये हो ?

छन्दक—हाँ, देव, लाया हूँ।

शुद्धोधन—शीघ्र कहो कुमार का क्या संदेश है ?

(सब दत्तचित्त होकर सुनते हैं)

छन्दक—(हाथ जोड़ कर)

युवराज ने जब कन्थक को साथ लेकर लौट जाने की आज्ञा की तो मैंने बार-बार उनके चरण पकड़े और बालकों सा विलाप किया। कन्थक भी उनके आशय को समझ रहा था और कान खड़े करके उन्हें अश्रुपूर्ण नेत्रों से देख रहा था। खुरों से पृथ्वी को कुरेदता था और जबड़ों से शब्द करता था मानो स्वामी से लौटने की प्रार्थना करता हो। युवराज ने कन्थक की ग्रीवा पर बार-बार स्नेह से हाथ फेरा और उसे रात्रि की यात्रा के लिये धन्यवाद दिया। हम दोनों के अनेक विनय करने पर भी वे महात्मा लौटने को उद्यत न हये और अपने

निश्चय पर अटल रहे । उस समय उनका मुखमंडल दिव्य तेज से प्रभासित था । उन्होंने यह सन्देश देकर हमें विदा किया—

“महाराज को मेरे वचन से आरोग्य और चरणस्पर्श कहना और कहना तुम्हारा पुत्र जीवन में रोग जरा और मृत्यु देख कर विरक्त हुआ है । इन दोषों से युक्त जीवन के भोग क्षणिक और हेय हैं । मुझे ऐसे राज्य से अब काम नहीं जो इन विपत्तियों से जीवन की रक्षा न कर सके । मैं सभी मनुष्यों को इन दोषों से बचाने का उपाय देखूंगा और ऐसे राज्य को प्राप्त करूंगा जहाँ न रोग हो, न जरा न मृत्यु । यह मेरा दृढ़ निश्चय है । अपने प्रयत्न में सफल हुआ तो लौट कर दर्शन करूंगा । मेरे लिये शौक न करें । सबको समझा देना कोई शोक न करे ।”

(एक क्षण की निस्तब्धता)

गौतमी—अपनी पोषिका माता के लिये कुमार ने कुछ कहा ?

यशोधरा—अपनी सहधर्मिणी के लिये कोई सन्देश नहीं भेजा ?

मन्त्री—आप सब सुनें ।

कुमार की यह चित्तवृत्ति सभी को विदित थी । असित मुनि की उस भविष्यवाणी को आप सब स्मरण करें । उन्होंने कह दिया था कि यह कुमार सांसारिक सुखों के बन्धन में नहीं बाँधा जा सकता—न स्वर्ग के प्रलोभन से और न चक्रवर्ती राज्य के प्रलोभन से । यह निःसन्देह परम ज्ञान को प्राप्त कर संसार को दुःखों से बचाने का महा

प्रयत्न करेगा । इसीलिये कुमार चले गये और उन्हें कोई न रोक सका । ऐसा अद्वितीय गुणवान और महात्मा प्रजा के सौभाग्य से जन्म लेता है । इसलिये आप सब शोक का परित्याग करें ।

राजगुरु—हाँ अब यही उचित है ।

शुद्धोधन—वह धर्म-कर्म यहाँ भी कर सकता है । उसकी रक्षा के लिये हम बन में भी रह सकते हैं । वेदविहित आर्य परम्परागत सभी सत्कर्म यहाँ संभव हैं । मंत्री, कुमार भूल कर रहा है और अनजाने अपने प्रियजनों को शोकाग्नि में जला रहा है ।

यशोधरा—उन्हें अब किसी से मोह नहीं रहा ! वे अब अकेले ही धर्म करेंगे । जब मुझ सहधर्मचारिणी को त्याग कर चले गये तो कैसे उन्हें धर्म होगा ! आर्य परम्परा में राजाओं और महात्माओं ने जीवन-संगिनी को साथ लेकर ही धर्मकर्म किये थे जिससे परलोक में दोनों साथ-साथ पुन्य का उपभोग करें । मुझे अनाथ करके वे अकेले ही स्वर्ग-सुख का भोग करेंगे । मुझे त्याग कर अब वे स्वर्ग की अप्सराओं को पाना चाहते हैं । यदि मुझमें दोष था तो उस सुकुमार बालक में तो कोई दोष नहीं था ! राहुल का भी उन्होंने विचार नहीं किया । उस अभागे ने तो अभी पिता की गोद का स्पर्श भी नहीं किया ।

गौतमी—धर्मकर्म के लिये समय पड़ा है । कुमार की अवस्था ही क्या है जो धर्म की अभी से चिन्ता हुई !

यशोधरा—मेरा अनिष्ट फिर कैसे होता ! मैं कोपशीला स्वर्ग

में भी उनके साथ रहती । वे मेरा साथ अब नहीं चाहते ।

मंत्री—महाराज, यदि ऐसा ही है तो कुमार के लौटाने का एक प्रयत्न और हो । यदि देव की आज्ञा हो तो मैं और शास्त्र-पारंगत राजगुरु जायें और कुमार से धर्म पर वाद विवाद रोपें तथा हर संभव उपाय से कुमार को यहाँ लावें ।

शुद्धोधन—तब ऐसा ही करो मंत्री ! रथशाला से तीव्रगति के रथ लो और यथासंभव शीघ्र जाओ क्योंकि कुमार के यहाँ जाने से ही हम सबों का शोक दूर हो सकता है । छन्दक मार्ग बतावे ।

गौतमी—हाँ यही हो ।

(मंत्री और राजगुरु जाने को उद्यत होते हैं)

शुद्धोधन—और सुनो ! मेरी ओर से पुत्र को आशीर्वाद बोल कर कहना “तुम्हारी धार्मिक वृत्ति को मैं जान गया हूँ, परन्तु धर्म बन में ही सिद्ध नहीं होता, नगर और उपवन में भी सिद्ध होता है । मेरे पुत्र, मैं तुम से दया की याचना करता हूँ; तुम्हारे बिना मुझ वृद्ध का जीवन ऐसे ही नष्ट हो जायगा जैसे सूर्य के चले जाने पर दिवस का अंत हो जाता है ।”

मंत्री—महाराज का सन्देश मैंने समझ लिया ।

गौतमी—माता का आशीर्वचन बोल कर कहना तुम्हारे बिना सूने भवन और आसन, परित्यक्त अंगलेप, वस्त्र और भूषण को देख-देखकर तुम्हारी पोषिका ऐसी व्याकुल हो रही है, जैसे वत्स से बिछुड़ी गाय । तुम्हारी निर्दोष

जीवन संगिनी वियोग-व्याकुल अधीर और विह्वल है—
मेरा पुत्र दर्शन देकर उसे बचावे ।

यशोधरा—अपने सुकुमार राहुल का कुछ तो मोह करें ।

मंत्री—मैंने महारानी और युवराजी के सन्देश भी गाँठ बाँध लिये ।

(मंत्री, राजगुरु और छंदक नमस्कार करके जाते हैं)

शुद्धोधन—(उठकर और निःश्वास छोड़कर) गौतमी, निरंतर अश्रु-प्रवाह से तुम्हारे अंजन रहित नेत्र विकल हो रहे हैं । तुम्हारे महीन मँले वस्त्रों से ढंका शरीर धूमिल कुहार ढंके सुमेरु-शिखर की तरह अशो-भित है । अब इस विलाप को रोको और कर्तव्य कर्म देखो । पुत्री यशोधरा की शोक-संताप से रक्षा करो जैसे माता अपने इकलौते पुत्र की ।

यशोधरा—(गौतमी के कंधे पर सिर रख कर) मैं अभागी अब कैसे करूँगी !

(पदाँ गिरता है)

दूसरा दृश्य

स्थान—एक मार्ग जो एक तपस्वी-आश्रम और बन के बीच स्थित है । इसी मार्ग से आश्रम के तपस्वी बन से समिधा, पुष्प, फल आदि लाते हैं । नेपथ्य में वेद-मंत्रों के सामूहिक उच्चारण और “स्वाहा” की ध्वनि होकर समाप्त होती है । आश्रम की ओर से दो तपस्वी निकल कर आते हैं । समय पूर्वाह्न ।

पहला—इस तरुण राजकुमार ने पूर्ण युवावस्था में राज्य सुलभ भोगों को त्याग कर बड़ा दुष्कर कार्य किया है । उसकी धर्मजिज्ञासा बड़ी प्रबल है । वह मेधावी घूम-घूम कर सभी तपोविधियों का गंभीर अध्ययन कर रहा है ।

दूसरा—परन्तु वह कहता है कि इतने काय-कष्ट क्या स्वर्ग प्राप्ति के लिये ही हैं ! कदाचित्त उसे सन्तोष नहीं हो रहा । (आश्रम की ओर देख कर) वह महात्मन इधर ही आ रहा है । उसके दर्शन से वृक्षों के पक्षी कलरव कर रहे हैं । उस गाय को देखो, जो अभी अपने बछड़े को चाट रही थी, कैसे कान उठा कर इसके दिव्यरूप को निहार रही है ! तपस्वी वेष में यह शाक्य-कुल प्रदीप सिंह-गति से हवनधूम्र-धूमिल सघन वृक्षों से निकल कर ऐसे ही आ रहा है जैसे वर्षा-मेघों से निकलता हुआ सप्तसप्ती । इस महापुरुष को समुचित आदर देना योग्य है ।

(तपस्वी वेष में सिद्धार्थ का प्रवेश)

सिद्धार्थ—तपस्विओ, प्रणाम करता हूँ ।

दोनों—कल्याण हो ।

पहला—सौम्य, आश्रम में सुख से तो हो, कष्ट तो नहीं है ?

सिद्धार्थ—आश्रमवासियों के आतिथ्य से मैं बहुत सम्मानित हुआ हूँ । यहाँ सभी स्वजन से मेरे परम हितैषी और स्नेही हैं । धर्मपरायण तपस्विओं में मेरा यह प्रथम वास बहुत सुखकर हुआ है ।

दूसरा—आप इन्द्रसम महात्मन को पाकर आश्रम के तपस्वी भी परम सन्तुष्ट हुए हैं । सबकी इच्छा है आप यहाँ स्थायी निवास ग्रहण कर इच्छित तप प्रारम्भ करें ।

सिद्धार्थ—परन्तु मुनिवर, मैंने यहाँ से आज जाने का निश्चय कर लिया है ।

दोनों—(विस्मय से) क्यों ?

दूसरा—इस आश्रम में आपने कोई त्रुटि देखी ?

पहला—किसी का धर्मविरुद्ध आचरण देखा ?

सिद्धार्थ—नहीं मुनिवर । शास्त्र-परम्परा के अनुसार सभी तपस्वी अपने धर्म का यथेष्ट आचरण कर रहे हैं । यहाँ धर्म-विरुद्ध मैंने कुछ नहीं देखा । उद्देश्य की भिन्नता देख कर ही मैं यहाँ से जा रहा हूँ । यहाँ तपस्विओं का प्रधान लक्ष्य स्वर्ग है और मैं जीवन के शत्रु रोग, जरा और मृत्यु से मुक्ति प्राप्त करने निकला हूँ, जो निश्चय ही पुनर्जन्म के पूर्ण अभाव से ही सम्भव है ।

दूसरा—आप मोक्ष के संकल्प से ही तपश्चर्या में प्रवृत्त हों ।

स्वर्ग-प्राप्ति तो पहिली सीढ़ी है, तप को और आगे भी बढ़ाया जा सकता है ।

सिद्धार्थ—यदि संकल्प से ही लक्ष्य प्राप्त होता तो स्वर्ग का संकल्प करके संसार के सुख भी भोगे जा सकते हैं । कठिन तपश्चरण से शरीर को पीड़ित करने से क्या लाभ ?

दूसरा—शास्त्रोक्त तपश्चर्या बृहस्पतियों, देवर्षियों, और राज-र्षियों से सेवित हैं । जीवन के भोग विलास त्याग कर, शारीरिक क्लेश सहकर ही पुण्य अर्जित होता है और वही स्वार्जित पुण्य परलोक के सुख में पुष्पित और फलित होता है ।

पहला—शास्त्र-वचन में शंका अवांछित और अनिष्टकारी होती है ।

सिद्धार्थ—न तो मैं अवांछनीय शंका से कुछ कहता हूँ और न तपश्चरण में दोष देख कर । मैं धर्म-जिज्ञासा से प्रेरित होकर और लक्ष्य की भिन्नता देख कर ही आप तपस्वियों से अपने चित्त की बात कहता हूँ । उदारता से भी असत्य आचरण मेरे लिये संभव नहीं है । यदि शारीरिक कष्ट इस लोक में पुण्य है और सुख-भोग पाप, तो परलोक में भी वैसा ही होगा । स्वर्ग में जाकर भी विषय-सुख का वही परिणाम होना चाहिये जो इस लोक में है । इस लोक के सुख हीन हैं और स्वर्ग के उत्तम यह बात अलग रही, परन्तु परिणाम में क्या अन्तर होगा ? स्वर्ग-सुख की आशा से सदा प्रयत्न करते प्राणी जिस मृत्युगर्त से स्वर्ग में बचने की आशा करते हैं, वहाँ भी

वे उसी में डूबते हैं । दीन प्राणी को कहीं भी सुख नहीं है । परन्तु मैं जो इस जीवन में रोग, जरा और मृत्यु देख कर अत्यन्त व्याकुल हूँ, इतने मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो सकता । बुद्धिमान को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जो बार-बार कष्ट न भोगना पड़े और एक महान प्रयत्न के बाद कुछ करणीय शेष न रहे ।

दूसरा—तपश्चरण के अतिरिक्त फिर कौन सा मार्ग है ?

सिद्धार्थ—प्रियजनों को दारुण सन्ताप में डाल कर मैं उसी मार्ग को ढूँढने निकला हूँ । स्वर्गहित तपश्चरण से मैं अपनी मुक्ति नहीं देखता क्योंकि ये तप अधिक दूर नहीं ले जाते । फिर ये शारीरिक कष्ट उठा कर स्वर्ग-सुख अवश्य ही मिलेगा, यह कौन जाने ।

दूसरा—शास्त्र-वचन ऐसा ही है । ऋषियों की परम्परा का आधार यही विश्वास है ।

सिद्धार्थ—यदि इस लोक में सुख से वंचित रहना स्वर्ग-प्राप्ति का साधन है तो जो प्राणी अनेक कारण से यहाँ सुख-वंचित हैं वे निश्चय ही जन्मान्तर में स्वर्ग प्राप्त करेंगे—जैसे महा निर्धन, विकलेन्द्रिय और पीड़ित । यदि आहार के कठोर नियंत्रण से ही स्वर्ग प्राप्त होता है और तृण खाकर, केवल जल पीकर अथवा वायु से प्राण धारण करके ही स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त होता है तो जितने पशु पक्षी, जलचर और सर्प आदि हैं उनको अनायास ही स्वर्ग प्राप्त होगा ! तपस्विओ मैं इसमें अपनी मुक्ति नहीं देखता ।

पहला—फिर दूसरा कौन साधन आप उचित जानते हैं ?

सिद्धार्थ—केवल चित्त का दमन करके ही काम-सुखों से निवृत्ति पाई जा सकती है क्योंकि चित्त से प्रेरणा पाकर ही यह शरीर प्रवृत्त और निवृत्त होता है । जन्म से मुक्ति कैसे मिलेगी—यह जानने को तो मैं घर से निकला ही हूँ ।

दूसरा—हे सौम्य, आपकी मेधा प्रखर है । आपका निश्चय प्रशंसनीय है, क्योंकि जप-तप यज्ञ और नियम से स्वर्ग-प्राप्ति का इच्छुक काम और राग से मुक्ति नहीं पाता, परन्तु जो तत्त्वदर्शी है, वे रागादि शत्रुओं पर विजय पाकर परमपद को प्राप्त होते हैं ।

सिद्धार्थ—यह परमपद ही मुझे जन्म से छुटकारा दे सकता है, और उसी की साधना में मेरा कल्याण है । इसी हेतु मैं यह तपोवन छोड़कर जा रहा हूँ, अन्य कारण से नहीं । आश्रम छोड़ने में मुझे भी अवश्य ऐसा ही दुख है, जैसा स्वजन को छोड़ने में हुआ था ।

(चलने लगते हैं)

दूसरा—ठहरो, सौम्य ! अब कहाँ जाने का निश्चय किया है ?

सिद्धार्थ—भूखा गरुड़ जैसे आकाश चीरता हुआ क्षुधा की तृप्ति के लिये फिरे, उसी प्रकार धर्म-जिज्ञासा से दग्ध हुआ मैं मोक्ष-मार्ग को पृथ्वी तल पर ढूँढ़ता फिरूँगा । रोग जरा मृत्यु से आक्रान्त जन्म से मुक्ति पाना ही मेरा परम लक्ष्य है ।

दूसरा—हे सौम्य, आपका विस्तृत ललाट आपके दृढ़ संकल्प को, सुन्दर विशाल नेत्र आपकी धर्म-जिज्ञासा को और

उज्ज्वल मुख-मंडल आपके संचित पुण्य को प्रभासित कर रहे हैं। आपके लक्षण उन महापुरुषों के से हैं जिन्होंने तत्व को पाया है। यदि आप का यही निश्चय है तो आप मगध राज्य की ओर जायें, वहाँ कालाम गोत्र का ऋषि आलार अपने आश्रम में निवास करता है। वह नैष्ठिक योग का धनी है, उस महायोगी से मिलकर आपको अवश्य आनन्द होगा।

पहला—उसी राज्य में उद्रक रामपुत्र दूसरा महायोगी भी है। यदि रुचि हो तो आप उस आश्रम में भी जायें।

सिद्धार्थ—इस उपयोगी सूचना के लिये आपका आभारी हूँ।

दूसरा—यहाँ से पूर्व सुन्दर अचिरवती की शान्त धारा है, उसे पार कर सरयू के उत्तर में ही अपना यात्रा-क्रम रक्खें। मगध राज्य में पहुँच कर गंगा का विशाल प्रवाह आपको मिलेगा। उसे पार कर दक्षिण को जायें जहाँ मगध-राज श्रेणिय बिम्बसार की पंचशिखर-परिवेष्टित इन्द्रपुरी सम राजगृह राजधानी है।

सिद्धार्थ—अति कृपा हुई नमस्कार, स्वीकार कीजिये।

(सिद्धार्थ का प्रस्थान)

दोनों—तुम्हारी यात्रा मंगलकारी हो।

पहला—त्वरितगति से जाता हुआ यह महात्मन शनैःशनैः वन वृक्षों में वैसे ही विलीन हो रहा है जैसे सन्ध्या के आवरण में अस्ताचलगामी सूर्य।

दूसरा—बहुत शीघ्र ही वह दृष्टि से ओझल हो गया। इसकी जैसी बुद्धि है, वैसी नम्रता भी है। नम्रता के अनुरूप

इसकी धर्म-जिज्ञासा है, धर्म-जिज्ञासा के अनुरूप इसका संकल्प और संकल्प के अनुरूप इसकी गति भी है ।

पहला—इस महात्मान के जाने से मुझे शून्यता का अनुभव हो रहा है ।

दूसरा—सज्जनों का वियोग ऐसा ही होता है ।

पहला—मैं सोचता हूँ जिन आत्मीय जन को त्याग कर इसने सन्यास लिया है वे इसकी विरह-व्यथा को कैसे सहन करते होंगे !

दूसरा—तेजवन्तों की गति अबाध होती है । सूर्य कमल-कुल के दुःख का विचार करके अपनी गति स्थिर नहीं करता । चन्द्रमा कुमुदनी कानन के नीरव विलाप पर हंसता हुआ अपने निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होता है । यह तेज-निधान भी अपने स्वजन की विरह-बाधा को अस्वीकार कर अपने लक्ष्य की ओर उसी प्रकार अग्रसर हो रहा है । अवश्य ही इसमें दैवी शक्ति परिलक्षित होती है ।

(मन्त्री और राजगुरु का प्रवेश)

दोनों—आप तपस्वियों को नमस्कार !

दोनों—(हाथ उठा कर) कल्याण हो !

मन्त्री—तपस्वियो, मैं कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोधन का मन्त्री हूँ और मेरे संग ये शास्त्रपंडित राजपुरोहित हैं ।

दूसरा—आप सज्जनों का दर्शन आश्रमवासियों के लिये सुख-कारी है ।

मन्त्री—क्या आप महात्माओं ने तपस्वी वेप में एक ऐसे राज-कुमार को देखा है जिसका मुखमंडल ओजपूर्ण और वक्ष

विशाल है। उसकी नासिका प्रभावकारी, प्रफुल्ल नील कमल से उज्ज्वल नेत्र और निर्दोष लाल ओठ हैं। वह सिंह-गति से चलता और मेघ के मधुर्गर्जन सी मीठी गंभीर वाणी बोलता है। वे हमारे युवराज हैं और जीवन में रोग वृद्धावस्था और मृत्यु को देखकर विरक्त हुये हैं।
दोनों—हाँ, हाँ।

पहला—वही महापुरुष अभी इस ओर गया है। थोड़ी दूर ही पहुँचा होगा।

राजगुरु—तो चलो, मंत्री शीघ्र चलो।

दूसरा—आप दोनों वयोवृद्ध हैं। यात्रा से थके प्रतीत होते हैं।
 उस तीव्रगामी युवक को पाना कठिन होगा।

मंत्री—हमारे साथ रथ हैं जो आश्रम के बाहर खड़े हैं। हमें उस दुर्धर्ष कुमार से अभी मिलना अभीष्ट है।

दूसरा—तो जाइए। आश्रम के दक्षिण पथ से निकल कर पूर्व की ओर मुड़िए। वह राजकुमार इस बन से निकल कर उसी मार्ग पर जाता मिल जायगा।

(मंत्री और पुरोहित आश्रम की ओर लौटते हैं)

(पहिले तपस्वी से) चलो, बन से समिधा और फूल-फल ले आवें। इस राजकुमार की स्मृति सदा बनी रहेगी।

(दोनों बन की ओर जाते हैं)

तीसरा दृश्य

(स्थान—वन का मार्ग । सिद्धार्थ शान्तभाव और स्थिर

दृष्टि से एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं)

(मन्त्री और राजगुरु का प्रवेश)

मन्त्री—युवराज की जय हो !

राजगुरु—युवराज स्वस्थ तो हैं ?

सिद्धार्थ—आओ गुरुदेव, आओ मन्त्री ।

(मन्त्री और राजगुरु सिद्धार्थ के दोनों पार्श्व में खड़े होते हैं)

आप दोनों वयोवृद्ध मेरे आदरणीय हैं । मैं आपका उद्देश्य बिना कहे ही समझ रहा हूँ । आपने इब्रना कष्ट क्यों उठाया ! विराजें आप ।

(दोनों बैठ जाते हैं । एक क्षण की शान्ति)

राजगुरु—कुमार, आपकी धर्म के प्रति रुचि प्रशंसनीय है । आप का पराक्रम जैसे राज-काज में वैसे धर्म-प्राप्ति में भी अतुलनीय होगा । परन्तु कुमार आपसे धीर-वीर के लिए बनखण्ड में आना आवश्यक नहीं था । आपके लक्ष्य को अब सभी जान गए हैं । आप नगर को लौट चलें । यदि एकान्तवास की ही इच्छा है तो वहाँ अनेक सुन्दर उपवन हैं, वहीं आप सुखपूर्वक ठहरें ।

मन्त्री—युवराज की धर्म-जिज्ञासा अनुचित नहीं है । परन्तु यह समय उपयुक्त नहीं है । आपके पिता वृद्ध हैं । तरुण

पराक्रमी युवराज के न रहने से शाक्य-राज्य पर संकट आ सकता है। आप जानते हैं राज्यलक्ष्मी की रक्षा उद्योग और पराक्रम से ही संभव है। महाराज की आप ही एक आशा हैं। ऐसे पुत्र-वत्सल पिता को शोकाग्नि में डाल कर राज्य को अरक्षित छोड़ना धर्म-संगत नहीं है। किसी भी धर्माभिलाषी को इस प्रकार धर्म प्राप्त नहीं होता।

राजगुरु—कुमार तुम्हारे पिता अत्यन्त व्याकुल हैं। पिता होते हुए भी वे पुत्र से दया की याचना करते हैं। जो धर्मात्मा सब जीवों पर दया करते हैं, क्या वे अपने पिता पर दया नहीं कर सकते ! वे राज्य तुम्हें सौंप कर स्वयं बन जाना चाहते हैं। आपकी माता गौतमी विलाप कर रही हैं। स्नेहमयी गौतमी को शोक-सागर में डुबोना क्या उचित है ! आपकी जोवन-सहचरी गौपा आर्तनाद करती प्राण त्याग देगी। एक दिन उसकी जीवन-नौका पार लगाने का मृदु भार आपने स्वयं सहर्ष स्वीकार किया था। क्या आपसे पराक्रमी स्वामी के रहते वह अनाथ हो जायगी ! कुमार विचार करो।

सिद्धार्थ—पुरोहित, आप और मंत्री ने जो कुछ कहा यह मेरे हित चिन्तन से प्रेरित होकर युक्ति-युक्त ही कहा है। महाराज का मेरे प्रति जो स्नेह है, उसे मैं जानता हूँ। मौसी गौतमी, यशोधरा, राहुल सभी मेरे प्रिय हैं। यदि उपाय हो तो कोई कभी अपने प्रियजन को न छोड़े। परन्तु मैं देखता हूँ वियोग अवश्यम्भावी है। मैं इन्हें न छोड़ूँ तो

भी ये मुझे एक-एक करके छोड़ जायेंगे । यह समागम अल्प-कालिक स्वप्न सदृश है और फिर अनन्त वियोग है । संसार की गति को ऐसा देखते हुए भी यदि वे सन्ताप कर रहे हैं तो इसका कारण मैं नहीं हूँ । इसका कारण केवल अज्ञान है । मृत्यु सभी जन्मों में स्वजन से वियोग कराती है । यहाँ भी गर्भ से लेकर सभी अवस्थाओं में वह अपना खड्ग लिए उद्यत रहती है । कोई कभी भी अलग हो सकता है । फिर मोक्ष-साधन के लिए कोई समय अनुपयुक्त क्यों हो ! रोग और बुढ़ापा इन्द्रियों को शिथिल करते हैं । फिर पराक्रम और भोग-विलास के लिए विकाल हो जाता है । काल इतने से सुख को भी हर समय छीनने को उद्यत रहता है । दीन प्राणी के लिए कुछ भी निश्चित नहीं है । तो फिर परम कल्याण की प्राप्ति के लिए क्या कोई समय निश्चित है ? महाराज मुझे अपना राज्य देना चाहते हैं । उनका स्नेह मैं जानता हूँ, परन्तु मेरे लिए उस राज्य को ग्रहण करना उचित नहीं । राज्य सुन्दर कुसुम के सदृश है जिसमें विषकीट है, हीरक के समान है जो हलाहल भी है, सुन्दर भोजन के समान है जिसमें विष मिला है, सुन्दर स्वर्णमन्दिर के समान है जो आग से जल रहा है । राज्य का सेवन मद-मोह, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-विषाद, तथा अनाचार और अत्याचार से ही संभव है । न उसमें सुख है, न धर्म न सन्तोष । मुझ मोक्षाभिलाषी के लिए राज्य का सेवन वैसे ही है जैसे जीवनाभिलाषी रोगी के लिए

महा कुपथ्य ।

राजगुरु—कुमार, क्या धर्म बन में ही सिद्ध होता है, नगर में नहीं होता ? एक राजपुत्र कुल-धर्म त्याग कर, काषाय वस्त्र पहिन कर बन को जाय तो प्रजा उसे कायर ही कहेगी । आपने उन धर्मात्मा नृपश्रेष्ठों की कथायें क्या नहीं सुनीं जिन्होंने राज्यलक्ष्मी और मोक्ष-धर्म का एक साथ ही आलिगन किया । उन्होंने काषाय वस्त्र पहिन कर बन में बास नहीं किया और न क्षात्र-धर्म को लांछित किया । राजा बलि, रन्तिदेव और बज्रबाहु की कथायें आपने नहीं सुनी । विदेह राजा जनक ने राज्यलक्ष्मी के साथ मोक्षधर्म का भी लाभ किया । धर्म-परायण भरत ने राम के बन-गमन पर राज्य की रक्षा की और राम ने बन से लौट कर राज्य-सुलभ भोगों को ग्रहण किया । शास्त्र-सम्मत धर्माचरण, विद्या, गृहस्थ, बनवास और मोक्ष का क्रम निर्देश करता है, उसकी आप उपेक्षा कर रहे हैं । आपकी तरुण अवस्था है जब कि इन्द्रिय और मन विषयों के प्रति जागृत रहते हैं । आपके कुसमय और क्रमहीन बनवास से मनोरथ सिद्ध नहीं होगा । शास्त्र विहित क्रम से राज्य-लक्ष्मी और ज्ञान एक साथ प्राप्त होते हैं । इसलिये कुमार, वही उत्तम है ।

सिद्धार्थ—पुरोहित, आपने जो धर्म-क्रम बताया वह शास्त्र के अनुसार ही है—यह मैं मानता हूँ । परन्तु किसी का यह क्रम पूर्ण हो जाने तक प्रतीक्षा करने के लिये मृत्यु वचन बद्ध नहीं है । न रोग उस क्रम में बाधा डालेंगे—ऐसा

शास्त्र का उत्तरदायित्व ही है। आपने पूर्व समय के जिन राजाओं के उदाहरण दिये वे भी मेरे लिये प्रमाण नहीं हो सकते। शान्तिमय मोक्ष-धर्म और दंड-भय-पूर्ण राज-धर्म से कोई मेल नहीं है जैसे शीतल जल और अग्नि का। उन राजाओं ने राज्य और मोक्ष को एक साथ धारण किया ऐसा मैं नहीं मान सकता। यह केवल जनश्रुति है। यदि उन्होंने शान्ति पद पाया था तो निश्चय ही राज्यपद छोड़ दिया होगा, और यदि राज्य-संचालन किया तो मोक्षपद पाने का मिथ्या अभिमान किया होगा। उन्हें राज्य में परम शान्ति मिली हो यह अनिश्चित है। मैं जिन बन्धनों को काट कर मुक्ति-मार्ग पर अग्रसर हुआ हूँ, उनको फिर अपने कंठ में नहीं डाल सकता। मेरा गृह-त्याग अनिश्चय से नहीं है।

मंत्री—सौम्य युवराज, जिसने जन्म लिया है वह बालक, युवा और वृद्ध होगा ही और अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होगा। यह हर प्राणी का निश्चित क्रम है। यह स्वभाव से है, प्रकृति या ईश्वर से इस विषय में अनेक मत हैं। परन्तु मनुष्य का इस पर अधिकार नहीं है। जिस मार्ग पर आप जाना चाहते हैं, वह दुस्साहस और दुराग्रह से अधिक कुछ नहीं है, ठीक उस बालक की तरह जो चन्द्रमा को हाथ में लेकर खेलने को रुदन करता है।

सिद्धार्थ—जीवन में इन्हीं दोषों को देख कर मैं विरक्त हुआ हूँ। इन्हें स्वभाविक मान कर दीन और दुखी होकर अपने और स्वजन के क्रमिक हृदय-द्रावक नाश को मैं

नहीं देखूंगा । जब विनाश अवश्यम्भावी है तो शुभ प्रयत्न में नष्ट हो जाना अच्छा । यदि जन्म के यह दोष अपरिवर्तनीय हैं तो मैं प्रयत्न करूँगा कि जन्म ही न हो जिसमें इन दोषों से पाला पड़े ।

मन्त्री—जन्म और पुनर्जन्म का प्रश्न भी संशय-रहित नहीं है । कुछ कहते हैं पुनर्जन्म अवश्य है, दूसरे कहते हैं कोई पुनर्जन्म नहीं है । ऐसी दशा में प्रत्यक्ष सुख-भोगों को त्याग कर अदृष्ट फल के लिये दौड़ना मृगतृष्णा को चरितार्थ करना है । प्राणी अपनी मूर्खता से भी सुखों से वंचित होता और विनाश को प्राप्त होता है ।

सिद्धार्थ—मन्त्री, किसी दूसरे के वचन जन्म और पुनर्जन्म का मेरे लिये प्रमाण नहीं होंगे । मैं स्वयं तप-योग के उद्योग से इसका अपने लिये निर्णय करूँगा । जीवन के जिन अल्प सुख-भोगों को आप इंगित करते हो, वे मेरे लिये काले विषधर के समान हैं, जिनसे दूर रहने में ही मैं अपना कल्याण मानता हूँ ।

मन्त्री—कुमार, आप मोक्ष में बालक जैसा उत्साह दिखा रहे हो जो अपनी इच्छित वस्तु के लिये माता को भी अपने कोमल हाथ से पीटता और हाथ के सुन्दर खिलौने को तोड़ देता है । हमारे पूर्वज ऋषियों ने जीवन के अथक उद्योग से मनुष्य के कल्याण के लिये जो मार्ग निर्दिष्ट किया है उसे आपने नहीं समझा । जीवन के चार पदार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जिस विधि-क्रम से प्राप्त हो सकते हैं, वही मार्ग ग्रहण करना उचित है । मनुष्य पितृ-ऋणि,

ऋषि-ऋणि और देव-ऋणि लेकर उत्पन्न होता है और उनसे उऋण होने के लिये सन्तान-पालन, वेदाध्ययन तथा यज्ञ-कर्म का शास्त्रीय विधान है। यही सच्ची मुक्ति है। इसीसे आपकी अभिलाषा पूर्ण होगी और परिवार का शोक सन्ताप मिटेगा।

पुरोहित—हाँ, यही मार्ग कल्याणकारी है। प्रियजन को शोक सागर में डुबोकर कोई वीर अपने अकेले की मोक्ष भी नहीं चाहता। उसमें स्वार्थ की गन्ध है। आप यथाशीघ्र कपिलवस्तु को लौटें और वेदविहित मार्ग पर चलें जिससे सबका उद्धार हो। इसमें आपको संकोच नहीं होना चाहिये। कुमार यह न सोचें कि बन में जाकर नगर को लौटना लज्जा की बात है। इतिहास इसका साक्षी है कि कर्तव्य के लिये मुनियों और वानप्रस्थी राजाओं ने बन छोड़ कर नगर में वास किया था। धर्म के लिये तपोवन छोड़ कर घर जाने में किंचित दोष नहीं है—इसे मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ।

सिद्धार्थ—आप दोनों मेरे गुरुजन और हितैषी हो। आपके वचन स्नेह से पूर्ण हैं। परन्तु.....

पुरोहित—कुमार, मैं हाथ जोड़ कर विनती करता हूँ कि एक बार नगर को लौट चलें। जो शास्त्र-सम्मत होगा उसका वहीं निर्णय हो जायगा।

सिद्धार्थ—मैं किसी जनश्रुति, परम्परा और अव्यवस्थित शास्त्र वचन को आधार मान कर अपने व्रत को नहीं तोड़ूँगा। यदि मेरा श्रम व्यर्थ भी जाय तो मुझे पश्चात्ताप न

होगा । क्योंकि शुभ के लिये वृथा प्रयत्न भी अशुभकारी विषय-सुख से उत्तम है । जो लोग व्रतभंग करके तपो-वन से घर लौटे वे मेरे लिये प्रमाण नहीं हो सकते । शास्त्र-वचन और जनश्रुति कुछ भी हो, दोष-नाश को मभी दार्शनिक परम कल्याणकर मानते हैं ।

(उठकर)

मैं अपनी इन्द्रियों को विषय की ओर नहीं मोड़ूंगा । मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर, तपस्वी-वेष त्याग कर और निर्लज्ज होकर फिर नगर में प्रवेश नहीं करूंगा । यह जीवन रहे या जाय मैं बिना तत्व को देखे घर नहीं लौट सकता । असफल होकर घर लौटने से तो अग्नि में जल कर मर जाना अच्छा ।

(गंभीर परन्तु शान्त मुद्रा से बाहर जाते हैं)

राजगुरु—कुमार, तुम्हें क्या हो गया है !

मंत्री—बूढ़े बाप का तुम्हें कोई विचार नहीं है !

राजगुरु—जीवन सहचरी गोपा प्राण त्याग देगी !

मंत्री—(उच्च स्वर से) शाक्य कुल डूब जायगा, कुमार !

राजगुरु—(उच्च स्वर से) लौटो कुमार, अब भी लौटो !

मंत्री—यह दुर्धर्ष अवाधगति से जा रहा है । यह नहीं लौटेगा ।

पुरोहित, अब क्या हो ?

राजगुरु—तुम नहीं देख रहे इसके अलौकिक मुख-तेज को !

कोई अज्ञात शक्ति इसके संकल्प को दृढ़ता प्रदान कर रही है । ब्रह्मा भी स्वयं आकर इसे नहीं लौटा सकता ।

वह मुड़ कर भी नहीं देखता । अपने प्रखर तेज से ऐसा

जा रहा है जैसे तेजस्वी इन्द्र व्रत-वध को जा रहा हो ।

मंत्री—आश्चर्य !

राजगुरु—लौट कर महाराज को ही समझाओ मंत्री, वही संतोष करें, और उपाय नहीं है ।

मंत्री—कुमार के समाचार देने को गुप्तचर छोड़ना आवश्यक है । इसका प्रबन्ध करके ही लौटना होगा ।

राजगुरु—जो उचित हो ।

(दोनों जाते हैं)

चौथा दृश्य

शुद्धोधन के अन्तःपुर में सिद्धार्थ का परित्यक्त शयन-कक्ष । शैया यथापूर्व बिछी है । सिद्धार्थ की शैया के समीप ही पृथ्वी पर यशोधरा ने अपनी शैया लगा रक्खी है । सिद्धार्थ के कुछ परित्यक्त राजसी वस्त्र टंगे हैं और शैया पर उनका खड्ग रक्खा है । एक ओर वीणा रक्खी है । गौतमी और मल्लिका आती हैं । गौतमी उदास होकर शयन-कक्ष के चारों ओर दृष्टि-पात करती है । मल्लिका के हाथ में पुष्पों से भरा एक पात्र है ।

गौतमी—(यशोधरा की शैया को इंगित करके) यशोधरा ने पृथ्वी पर शैया लगाई है ?

मल्लिका—हाँ, महारानी । उन्होंने आभूषण और सुन्दर वस्त्र त्याग दिए हैं । वे कहती हैं कि जब आर्यपुत्र काषाय वस्त्र पहिनते हैं तो मैं भी पहिनींगी, सुन्दर वस्त्रों से अब क्या ! आर्यपुत्र वस्त्र बिछा कर पृथ्वी पर सोते हैं तो मैं भी पृथ्वी पर सोऊँगी, पुष्प-शैया से अब क्या ! जब से यह समाचार मिला है कि कुमार एक ही समय भोजन करते हैं, तब से युवराज्ञी ने एक ही समय भोजन का व्रत लिया है । अब वे दुर्बलता से ऐसी दयनीय दीखती है जैसे शिशिर में पुष्प-पल्लव-विहीन उद्यान-लता ।

गौतमी—अब वह एकान्त-वासिनी हो गई है, मुझे उसकी बड़ी चिन्ता है । क्या वह इन पुष्प-मालाओं को धारण

करती है ?

मल्लिका—नहीं महारानी । इन पुष्पों को वे युवराज की शैया पर रख देती हैं । यह नित्य का नियम है । सबेरे कुम्ह-लाई हुई पुष्प-मालाओं को देख कर मुझ से कह रही थीं—पुष्प का जीवन भी क्या है ! पुष्प के विकास में प्रेमी को मूक निवेदन है कि वह आवे और उसके सौरभमय विकास को देखे । नहीं तो पुष्प का अपना जीवन निष्प्रयोजन है; प्रेमी के अभाव में वह अपनी पोषिका लता की गोद को ही मृत्युपाश समझ, निर्जीव और अधोमुख होकर झूल जाता है ।

गौतमी—अभागी कैसे धीरज धरे ! कभी राहुल की सम्भाल करती है ?

मल्लिका—राहुल के प्रति उनका आचरण उन्मादपूर्ण है । कभी कहती हैं—यह अभागा है, इसे दूर ले जा । कभी उस सोते हुए बालक को निर्निमेष निहारती हैं । उसका रोना सुन कर कभी भवन से बाहर चली जाती हैं, कभी उसे हृदय से लगाये करुणगीत गुनगुनाती हैं । जब वह रात्रि में सो जाता है तो उसके मस्तक पर बहुत समय तक हाथ फेरती हैं और कभी उस सोते हुए बालक को बाहुपाश में जकड़ कर वत्सलता के गरम आँसुओं से उसके मुख को गीला करती हैं ।

गौतमी—राहुल का मोह उसे जीवित रखेगा जैसे स्वाँत की एक बूंद चातक को । तू अच्छी सम्भाल रखना । संगीत में उसकी रुचि देखे तो प्रसन्न करना ।

मल्लिका—वे कभी-कभी दुख के गीत ही सुनना चाहती हैं ।

इससे उनका जी हल्का होता है ।

गौतमी—उसे जो रुचे, वही तू कर । मैं जाती हूँ । यशोधरा पूजा समाप्त करके आती होगी । मुझे देखकर तो उसके आँसू रुकते ही नहीं ।

(जाती हैं)

(मल्लिका पुष्प-पात्र को रख कर वीणा के तार मिलाने लगती हैं । यशोधरा खुले केश काषाय वस्त्र पहने प्रवेश करती हैं । मल्लिका पुष्पमालायें यशोधरा के हाथ में देती हैं । यशोधरा उन्हें सिद्धार्थ की शैया पर सजा कर रखती हैं । मल्लिका फिर वीणा के तार मिलाने लगती हैं । यशोधरा शनैः शनैः अपनी शैया पर आती हैं और सिद्धार्थ के पलंग से सिर लगाकर बैठ जाती हैं । मल्लिका

गाती है—)

मल्लिका—करुण अति पुनर्मिलन की आस !

दर्द-भरी स्मृति वा दिन की जब छाया मधुमास

गुंजित कुंज पुष्प-मंडप अरु मधुर्मिलन सहवास ।

(संगीत के करुणस्वर से विह्वल होकर यशोधरा

गाती हैं)

यशोधरा—वज्र गिरा उपवन पर रौरव, शून्य हुआ परिव्याप्त
छोड़ा देश, गये चिरसाथी, उत्सव हुआ समाप्त ।

शुभ प्रभात का मेला संध्या—समय हुआ अवसान

अरी मृत्यु आ, आना ही यदि, आज वियोग महान !

मल्लिका—वज्र न गिरते नित्य, न रहती सदा अंधेरी रात,

विकल पुकार नीड़-पक्षी की, आवे सुने प्रभात ।
(यशोधरा शून्य में स्थिर-दृष्टि से देखती बैठी रहती
है । संगीत समाप्त होकर पर्दा गिरता है)

तीसरा अंक

काम-पराजय

बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित मार-विजय
तथा ज्ञान-प्राप्ति की घटना

पात्र

शुद्धोधन—कपिलवस्तु के राजा, सिद्धार्थ के पिता

मंत्री—शुद्धोधन का मंत्री

सिद्धार्थ—भावी गौतम बुद्ध

पांच भिक्षु—कोण्डिन्य, वप्पाजी, भद्दिय, महानाम, अश्वजित

श्रोतिय—एक घसियारा

कामदेव—एक देवता

राहुल—सिद्धार्थ का छः-वर्षीय पुत्र

गौतमी—शुद्धोधन की पटरानी, सिद्धार्थ की पौषिका मौसी

यशोधरा—सिद्धार्थ की स्त्री

सुजाता—धनी गोपालक की विवाहिता कन्या

पूर्णा—सुजाता की दासी

कामसेना में २ सुन्दरी, १ गुप्तचर, राक्षसी, राक्षस आदि

पहला दृश्य

महाराज शुद्धोधन का मंत्रणा-भवन । समय दिन । शुद्धो-
धन पुत्र-वियोग में चिन्तित और दुर्बल, देखने में अधिक वृद्ध,
बढ़ी दाढ़ी, सिंहासन पर बैठे हैं । गौतमी और यशोधरा समीप
खड़ी हैं । युवराज्ञी यशोधरा भगवा वस्त्र पहने हुये हैं ।

शुद्धोधन—सिद्धार्थ की तपस्या अभी पूर्ण हुई या नहीं ! छः
वर्ष बीत गये ! मेरा जीवन अब अधिक नहीं चलेगा ।
क्या वह अपना प्रण पूरा करके अपने बूढ़े बाप के जीवित
रहते लौटेगा !

गौतमी—(आकाश की ओर देख कर) हे, देव !

(मन्त्री का प्रवेश)

मन्त्री—महाराज की जय हो, उरुवेला से गुप्तचर आया है ।
आज्ञा हो तो उपस्थित करूँ ।

शुद्धोधन—हाँ, बुलाओ । मेरे तपोवन-वासी पुत्र का क्या समा-
चार आया !

(सब उत्सुक हो देखते हैं । गुप्तचर का प्रवेश)

गुप्तचर—महाराज की जय हो !

शुद्धोधन—बोलो, मेरा पुत्र स्वस्थ तो है ?

गौतमी—कुमार अब जल्दी आवेंगे ?

गुप्तचर—महाराज, युवराज अभी उरुवेला प्रदेश के नेरंजरा के
तटवर्ती अपने आश्रम में ही हैं । जो पाँच तपस्वी भिक्षु
उनके साथ रहते थे, वे अभी उनकी सेवा करते वहीं

ठहरे हैं ।

शुद्धोधन—अभी उसका तपोव्रत पूर्ण नहीं हुआ ?

गौतमी—छः वर्ष बीत गये ! हा दैव ! मेरे कुमार को क्या कर दिया !

गुप्तचर—पाँचों भिक्षु आशा करते हैं कि युवराज जल्दी ही अमृत प्राप्त करेंगे । उन्होंने बड़े दुष्कर तप आरम्भ कर दिये हैं ।

यशोधरा—(हृदय पर हाथ रख कर) दुष्कर तप !

शुद्धोधन—वह क्या ? कुमार स्वस्थ तो है ?

गुप्तचर—जब युवराज उन सभी तपस्याओं को पूर्ण कर चुके जिनकी अन्य तपस्विओं ने प्रशंसा की है और उन्हें ज्ञान-दर्शन न हुआ तो उन्होंने अधिक दुष्कर तप आरम्भ किये । उन्होंने श्वास-रहित ध्यान-योग प्रारम्भ किया । कुछ समय तक उनका मन प्रसन्न और उनकी काया तत्पर रही ।

शुद्धोधन—(चिन्ता से) फिर !

गुप्तचर—देव, फिर उन महापुरुष ने, जो जन्म-मरण के रहस्य जानने को दृढ़-प्रतिज्ञ हैं, केवल अक्षत तंदुल से निर्वाह प्रारम्भ किया और बहुत दिन तक ध्यान-तप का यही क्रम चलता रहा । मुख, नासिका कान से श्वास-प्रश्वास बन्द करके ध्यान किया, उदर में वात रोक कर ध्यान किया और फिर उदर को बात-रहित करके ध्यान किया । इससे उन्हें अत्यन्त पीड़ा हुई । उनके कानों में वात धोंकनी की तरह शब्द करते थे, उनके शिर में वात

टकराते थे और शीश-वेदना होती थी । पेट में बात रखने से कोख में अत्यन्त पीड़ा होती थी और शरीर से स्वेद-प्रवाह होता था । इस तपक्रम से उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल और काला होगया ।

शुद्धोधन—(आतुरता से) फिर !

गुप्तचर—देव, फिर उन योगिराज ने आहार लेना बिल्कुल त्याग दिया ।

(यशोधरा गौतमी का सहारा लेकर मूर्छित होकर गिर जाती है । गौतमी उपचार करने लगती है ।)

शुद्धोधन—(सिंहासन से उठ कर) ओह !

(शुद्धोधन चिन्ता से टहलने लगते हैं । मन्त्री गुप्तचर को चुप रहने का संकेत करता है ।)

बोलो, फिर कुमार ने क्या किया ?

(एक क्षण की शान्ति)

मन्त्री—महाराज, अब इसे समाप्त करें ।

शुद्धोधन—नहीं मंत्री, मेरा हृदय अब वज्र से भी अधिक कठोर है । मुझे कुछ नहीं होगा । कहने दो । (गुप्तचर से) बोलो, फिर क्या हुआ ?

गुप्तचर—महाराज, यद्यपि युवराज का शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया है, परन्तु उनका मुख-मंडल दूज के शरच्चन्द्र जैसा कान्तिपूर्ण और दर्शन से सुखकारी है । उसके साथी पाँचों ब्राह्मण भिक्षु बड़े विनम्र और आज्ञाकारी हैं । वे कुमार की सेवा में ऐसे ही तत्पर हैं जैसे पाँचों इन्द्रियाँ मन की । वे कहते हैं कि ऐसे तपस्वी के शरीर में देव

ओज डालते रहते हैं और उसकी रक्षा करते है ।

मन्त्री—युवराज का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता । महाराज चिन्ता न करें ।

शुद्धोधन—परन्तु मंत्री, पिता के हृदय को कैसे सन्तोष हो ! आगमें जलते हुये पुत्र को छटपटाते देखकर माता-पिता की जो दशा होती है उसका अनुमान करो । वे उस आग में कूद कर उसकी रक्षा का प्रयत्न कर सकते हैं और अपने प्राण देकर भी सन्तोष पा सकते हैं । परन्तु यहाँ तो हम वह भी नहीं कर सकते !

(चिन्ता से सिर पर हाथ फेरते हुये टहलने लगते हैं)

यशोधरा—(मुर्छा से उठ कर चिल्लाती हुई) आर्यपुत्र को बचाओ ! बचाओ महाराज !!

(मंत्री के संकेत से गुप्तचर जाता है)

गौतमी—(यशोधरा को पकड़ कर) गोपा, पुत्री ! सावधान हो ! यहाँ कुमार कहाँ है ! शान्त हो पुत्री !

यशोधरा—(शून्य में देखती हुई) वे अन्धकार-पूर्ण प्रवाह में बह रहे हैं । मैं किनारे पर दीन हुई उन्हें पुकारती हूँ । वे किनारे तक आकर हाथ मेरी ओर बढ़ाते हैं और दीन-मुख-संकेत से कहते हैं—पकड़ो—बचाओ ! मैं उनका हाथ पकड़ने की चेष्टा करती हूँ, परन्तु वे उस अन्धकारमय प्रवाह में फिर अदृष्ट हो जाते हैं । ओह !

(गौतमी से लिपट कर रोती है)

गौतमी—(स्नेह से थपथपाकर) शान्त होजा मेरी पुत्री ! (ऊपर देख कर) हा विधाता !

शुद्धोधन—(विचलित होकर) मैं अपनी पुत्र-वधू को, राज्य की भावी महारानी को इस काषाय वेष में विलाप करते कब तक देखूँ !

मंत्री—मैं बल-पूर्वक कह सकता हूँ कि कुमार का अन्ततः कोई अनिष्ट नहीं होगा । इस घोर तपश्चर्या से सफल-प्रयत्न होकर वे ऐसे ही निकलेंगे जैसे वर्षा के घने मेघों को विच्छिन्न कर ज्वलन्त सूर्य । आप सभी धैर्य रखें । यह अलौकिक घटना दैव का विधान ही है । कुमार साधारण मनुष्य नहीं हैं । वे दिव्यशक्ति धारण कर इस संसार में अवतरित हुये हैं । वे निश्चय ही अपने निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचेंगे । कोई शक्ति उन्हें रोक नहीं सकेगी । महाराज, आपके और हमारे सभी प्रयत्न विफल हुये । वह तेजस्वी भार्गव ऋषि के आश्रम को हेय समझ कर चला गया । मगध-सम्राट बिम्बसार के बहुत विनय करने पर भी वह महात्मन नहीं रुका—सम्राट उन्हें अपना आधा राज्य देकर भी रोकना चाहते थे । महान नैष्ठिक योगी आलार कालाम और उद्रक रामपुत्र उसकी महान आकांक्षाओं के समय अतिहीन ठहरे । उनकी योगविधि को वह परमयोगी कुछ ही समय में पूर्ण कर वहाँ से भी चला गया । ऐसे महापुरुष के लिये चिन्ता और दया दिखा कर हम अपनी अल्पज्ञता का ही परिचय देते हैं । सूर्य को मेघाच्छन्न देखकर यदि हम रुदन करें तो उससे क्या लाभ होगा ! यदि हम प्रचण्ड तेज-पुंज उसी सूर्य की गति को हाथ उठा कर रोकने का प्रयत्न करें तो हमारी

यह चेष्टा हास्यास्पद ही होगी । महाराज, यह आपका पुत्र केवल निमित्त के लिये ही हुआ है । वह इस विश्व से भी महान है । अतः आप मोह त्यागें और तथ्य पर विचार करें । शोक विलाप बहुत हो चुका, अब हमें विवेक से काम लेना चाहिये । धन्य हैं महाराज आप, धन्य हैं महारानी महामाया, धन्य हैं यह रानी गौतमी और धन्य हो तुम पुत्री यशोधरा, जो ऐसे कुमार के स्वजन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ !

(सब निस्तब्ध होते हैं)

युवराज के कल्याण के लिये यदि व्याकुलता ही है तो शोक-सन्ताप से वह शान्त न होगी । इससे किसी का लाभ नहीं है । अपने कुल-धर्म के अनुरूप उनकी सफलता की दैव से प्रार्थना करें । इससे आपको शान्ति मिलेगी । जब मनुष्य असहाय होता है तो अपने को दैव के अर्पण करने से ही शान्ति पाता है । महाराज, स्वस्थ हों आप ।

शुद्धोधन—मन्त्री, तुम्हारे वचन से हृदय में एक प्रकार की आशा और शक्ति का संचार हुआ है । हाँ, विलाप अब निष्प्रयोजन है । गौतमी, तब आओ । पुत्री यशोधरा, आओ । कुमार के कल्याण के लिये देवों से प्रार्थना करें । हमारी शक्ति से जो बाहर है, उसे वे ही सम्हाल सकते हैं । आओ !

(गौतमी और यशोधरा घुटनों के बल बैठकर हाथ जोड़े ऊपर देखती हैं । शुद्धोधन पीछे खड़े होते । मन्त्री अपने

स्थान पर ही खड़ा है । छः वर्षीय राहुल दौड़ कर आता है और यह दृश्य देखकर स्तम्भित होकर रह जाता है । सबों को हाथ जोड़े देखकर वह भी प्रार्थना करने का नाट्य करता है ।)

सब—हे देवाधिदेव !

आपकी शक्ति अनन्त है । यह दुखी परिवार अत्यन्त दीन आप ही की शरण है । हम अशक्त और अल्पज्ञों में इतनी शक्ति भी नहीं है कि धैर्य रख सकें । कुमार का प्रण कठोर है । हम बड़े अधीर हैं । हे देव, आप प्रसन्न हों और हमारे प्रिय कुमार पर अपना वरद हस्त रखें जैसे माता अपने इकलौते पुत्र पर । उसे शक्ति प्रदान करें । उसका मनोरथ पूरा करें ।

पूज्य पितरो, हमारे संचित पुण्यों से और अपने स्नेह से आज इस कुल की रक्षा करो । हमारी विकलता में हमें धैर्य प्रदान करो । अपने पुण्य से कुल के कल्याण के लिये कुमार का कार्य सरल करो । हम आपकी शरण हैं ।

(प्रार्थना समाप्त करके शुद्धोधन राहुल को गोद में उठाते हैं । सब प्रसन्न होकर देखते हैं)

(पर्दा गिरता है)

दूसरा दृश्य

उरुवेला प्रदेश में नेरंजरा नदी के किनारे सिद्धार्थ का तपोवन । सामने ही पीपल का वृक्ष थोड़ा एक ओर है । वृक्ष के नीचे एक ऊँचे चबूतरे पर वज्रासन शिला पड़ी है । पीछे की ओर अन्य वृक्ष भी दिखाई देते हैं जिनमें एक बरगद का वृक्ष है जो सामने से स्पष्ट दीखता है । पृष्ठभूमि में नेरंजना नदी और एक मार्ग दिखाई पड़ता है । आश्रमवासी भिक्षुओं के वस्त्र इतस्ततः टंगे हैं तथा चटाई पात्र आदि रखे हैं—पांच भिक्षुक कौण्डिन्य, वप्पाजी, भद्दिय, महानाम और अश्वजित बैठे मंत्रणा कर रहे हैं ।

समय पूर्वान्ह

कौण्डिन्य—छः वर्ष तक दुष्कर तपस्या करके भी यह श्रमण गौतम बुद्ध नहीं हो सका । इसने आहार ग्रहण करना आरम्भ कर दिया है । अब बुद्ध क्या होगा !

वप्पाजी—हमारी छः वर्ष की सेवा व्यर्थ गई !

भद्दिय—इतने वर्षों तक आश्रम की झाड़ूबदारी करते रहे, अब हम उसकी सेवा नहीं करेंगे ।

महानाम, अश्वजित—हम से यह नहीं होगा कि भिक्षा माँग कर लावें और इसका पेट पालें ।

कौण्डिन्य—स्थूल आहार ग्रहण करने से यह धर्म से गिर गया ।

आर्य-पद्धति को छोड़ कर इसका तप सफल नहीं होगा ।

वप्पाजी—गौतम तपभ्रष्ट हो गया । अब हमें इससे क्या काम !

भद्विय—हम लोग अब यहाँ से चले जायें ।

महानाम—श्रमण गौतम के बुद्ध होने की प्रतीक्षा करना अब व्यर्थ है ।

अश्वजित—शिर से स्नान करने की इच्छा वाले को ओस की बूंद ताकने से क्या लाभ ?

कौण्डिन्य—फिर आप लोगों का क्या निश्चय है ? वह गौतम आ रहा है, हम उससे अपना निश्चय कह दें ।

वप्पाजी—अब हम यहाँ नहीं ठहरेंगे ।

भद्विय—हाँ, बस यही निश्चय है ।

महानाम, अश्वजित—हाँ, बस यही है ।

कौण्डिन्य—तब आज ही जाना उचित है । अपना निश्चय कहने के बाद एक क्षण भी यहाँ ठहरना उचित नहीं है । लो, वह आ गया ।

(सिद्धार्थ का तपस्वी-वेष में प्रवेश)

सिद्धार्थ—भिक्षुओ, क्या कथा हो रही थी, क्या वार्तालाप हो रहा था ?

कौण्डिन्य—आवुस गौतम, हम यह सोच रहे हैं कि इस आश्रम से आज चले जायें ।

सिद्धार्थ—सौम्य कौण्डिन्य, ऐसा निश्चय किस कारण से आपने किया ? इतने वर्ष तक यहाँ रहे अब किस कारण से जाना चाहते हो ?

कौण्डिन्य—आवुस गौतम, हम लोग इस आशा में रहते थे कि जब आप बुद्ध होंगे तो अपना ज्ञान हमें बतावेंगे । अब आप तप से भ्रष्ट हो गए हैं । हम आशा नहीं कर सकते

कि आप बुद्ध होंगे । इसलिए अब हमें चला जाना चाहिए ।

सिद्धार्थ—सौम्य, मैं तप-भ्रष्ट कैसे हुआ जाना ?

वप्पाजी—आप फिर से स्थूल आहार ग्रहण करने लगे हैं ।

भद्वि—इससे निश्चय ही आपका तप भंग हो गया ।

कौण्डिन्य—शास्त्र-वचन यही है ।

सिद्धार्थ—मित्रो, मैं परम ज्ञान-दर्शन के लिए कृत-निश्चय हूँ ।

मैं उस निश्चय से न हटा हूँ और न हटूंगा । मैं आप मित्रों से जो कहता हूँ उमे ध्यानपूर्वक सुनें । फिर जो उचित समझें वैसा करें ।

सब—आवुस गौतम, कहिए ।

सिद्धार्थ—मेरे तप की सारी क्रियायें आप देखते रहे हैं । मैं शनैः शनैः आहार कम करता गया था और अल्प आहार से मेरा शरीर दुर्बलता की चरम सीमा को पहुँच गया था । आप लोग ही कहते थे—तुम्हारा कूल्हा ऐसा हो गया है जैसे ऊँट का पैर, पीठ के काँटे ऐसे हो गए हैं, जैसे टेढ़ी-मेढ़ी सुओं की पंक्ति, खाल ऐसी सिकुड़ गई है जैसे सुखी मुझ्झाई लौकी । मेरे शिर की खाल सिकुड़ कर चुपट गई थी । मैं पेट की खाल को मसलता तो पीठ के काँटे पकड़ लेता था और पीठ के काँटे मसलता था तो पेट की खाल हाथ में आ जाती । इसके पश्चात् मैंने आहार का बिल्कुल त्याग कर दिया ।

सब—हाँ, आवुस ऐसा ही हुआ था ।

सिद्धार्थ—फिर मेरा वर्ण काला हो गया और मेरे शरीर के

रोम भी झड़ गए । मैं मलमूत्र के लिए उठता तो गिर पड़ता था । आप लोग ही मुझे सहारा देकर उठाते थे और आसन पर बैठाते थे ।

कौण्डिन्य—यह तो हम सभी जानते हैं ।

सिद्धार्थ—फिर मैंने श्वासरहित हो ध्यान करना प्रारम्भ किया और एक दिन मूर्छित होकर गिर पड़ा । आप लोग ही कहते थे “गौतम मर गया” कोई कहता था “नहीं मरा” ।

कौण्डिन्य—आप नहीं मर सकते थे । देवता रोम-कूपों द्वारा आप के शरीर में ओज डालते रहते ।

सिद्धार्थ—सौम्य कौण्डिन्य, यदि ऐसा होता तो यह मेरा ढोंग होता । मैं जिस शरीर को तप से सुखाता, देवता ओज डाल कर उसे बचाते ! यह बात मुझे रुचिकर नहीं हुई । फिर मैंने सोचा—अतीत में जिन तपस्विओं ने घोर तप किये, वे इतने ही थे—इससे अधिक नहीं । भविष्य में भी जो होंगे, इससे अधिक कायक्लेश नहीं सह सकते । वर्तमान में भी जो तपश्चरण कर रहे हैं, इतने से अधिक कटु वेदनायें नहीं सह सकते । परन्तु भिक्षुओ इतने शारीरिक कष्ट से भी मुझे ज्ञान-दर्शन नहीं हुआ । तब क्या बुद्धत्व प्राप्ति का मार्ग कोई और है ?

कौण्डिन्य—आवुस गौतम, और कोई मार्ग शास्त्र नहीं बताता ।

वप्पाजी—स्थूल आहार ग्रहण करके आपका तप भंग हो गया ।

सिद्धार्थ—मैं सोचता हूँ—इस शारीरिक दुःखपूर्ण तपोधर्म से न वैराग्य होता है, न बोध और न मुक्ति । भूख और प्यास से थका हुआ, जिसका चित्त अस्वस्थ है, वह चित्त से

प्राप्त होने वाले मोक्ष-सुख को कैसे अनुभव करेगा ! अब मैं सोचता हूँ—शरीर के स्वस्थ रहने से चित्त स्वस्थ होता है, चित्त स्वस्थ होने से समाधि सिद्ध होती है और समाधि-युक्त को ध्यान-योग सिद्ध होता है, और ध्यान-युक्त पुरुष को ही वह अमृत पद प्राप्त हो सकता है जो दुर्लभ, शान्त और अविनाशी है । शारीरिक कष्ट-पूर्ण तपस्या को व्यर्थ जान कर मैंने फिर से स्थूल आहार ग्रहण किया है । मैं अब फिर कुछ स्वस्थ हूँ । मेरा मन प्रसन्न है और मेरी इन्द्रिय शान्त हैं । मेरा चित्त समाधि में तत्पर है । मेरा विश्वास है कि यह धर्म विशुद्ध और स्वस्थ चित्त द्वारा ही प्राप्त होगा, शरीर को व्यर्थ क्लेश देकर नहीं ।

कौण्डिन्य—नहीं आबुस । हम ऐसा विश्वास नहीं कर सकते, न पूर्व के ऋषियों का ऐसा मत है और न शास्त्र वचन ही ।

सब—(उठकर) हमारा जाना ही अब उचित है ।

(पाँचों भिक्षु अपने वस्त्र, बिस्तर, पात्र आदि समेटते हैं और कोई चटाई लपेटता है । एक-एक करके जाते हैं । सिद्धार्थ उदासीन भाव से यह दृश्य देखते रहते हैं । भिक्षुओं के जाने पर सिद्धार्थ एक वृक्ष के नीचे आसन मार कर समाधिस्थ हो जाते हैं)

कुछ दिन पश्चात् वही दृश्य

(सिद्धार्थ बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित बंठे हैं । पृष्ठभूमि के मार्ग से सुजाता की दासी पूर्णा झाड़ लेकर

आती दिखाई देती हैं । उसके पीछे सुजाता सिर पर थाल रखे और हाथ में जल पात्र लिये शनैः शनैः आ रही हैं ।

समयः सूर्योदय के पश्चात्)

(पूर्णा झाड़ लेकर आती हैं)

पूर्णा—आज पूर्णिमा का दिन है । मेरी मालिकिन सुजाता आज बड़े बलिकर्म से वृक्ष-देवता की पूजा करेगी । एक दिन मेरी मालिकिन ने इसी वृक्ष-देव की पूजा करके वर माँगा था कि यदि उसका समान कुल में विवाह हो और प्रथम बार ही पुत्र-रत्न पावे तो बहुत धन से बलिकर्ममय पूजा करके वृक्ष-देव को सन्तुष्ट करेगी । उसकी वह कामना पूरी हुई । वह पूजा की सामिग्री और मधुर निर्जल खीर सोने के थाल में रख कर और स्वर्ण-पात्र में सुगन्धित जल लेकर आ रही है । तब तक मैं देवस्थान को झाड़ बुहार कर साफ कर दूँ । (सोच कर) यदि यह वृक्ष-देवता ऐसा है तो मुझ दासी को भी दासता के दुःख से उबारे । हाँ, हम दासों के पास पूजा करने और चढ़ावा देने को कुछ नहीं है । मैं पाँच सौ गऊ का दूध कहाँ से लाऊँगी ! मैं तो हाथ जोड़ कर सिर से नमस्कार ही कर सकती हूँ ।

(ब्रह्मरगद के वृक्ष की ओर जाती है और सिद्धार्थ को ध्यानस्थ बैठा देख कर चकित होती है । क्षण भर ठहर

कर सिर झुकाती हुई पीछे लौट आती है)

(स्वगत) आहा, आज वृक्ष-देवता पूजा ग्रहण करने को स्वयं आकर बैठे हैं ! यह तो बड़ा शुभ है । सुजाता का भाग्य ! मैं यह समाचार उसे दूँगी तो प्रसन्न होकर वह

मुझे भी कुछ देगी ।

(नेपथ्य की ओर सुजाता को देखती है । सुजाता का प्रवेश ।
सुजाता ने नये वस्त्र धारण किये हैं और शृंगार किया
है । सिर पर खीर का थाल एक नये वस्त्र में लपेट कर
लाई है । हाथ में जल-पूर्ण स्वर्ण-पात्र है ।)

सुजाता—पूर्णा, तूने देवस्थान साफ कर लिया ?

पूर्णा—(घबड़ाई हुई) भाग्यवती, प्रसन्न हो । आज वृक्ष-देव
तुम्हें दर्शन देंगे और अपने हाथ से तुम्हारी पूजा ग्रहण
करेंगे । तुम्हारे भाग्य जागे !

सुजाता—यदि तेरा वचन सफल हो तो तू दासत्व से मुक्त हुई ।
मैं तुझे पुत्री की तरह मानूंगी ।

पूर्णा—(बरगद की ओर इंगित करके) देखो उधर ! देवस्थान
पर स्वयं देव विराजमान हैं !

(सुजाता आश्चर्य और भक्ति से देखती है)

जाओ, अपनी पूजा अर्पण करो ।

(सुजाता बायें हाथ से सिर के थाल को पकड़ कर और
सीधे हाथ में जल-पात्र लेकर गौरवार्थ सिर झुकाती हुई
आगे बढ़ती है)

सुजाता—देव, प्रसन्न होइये । मेरी स्वल्प पूजा-सामिग्री को
ग्रहण कर मुझे कृतार्थ कीजिये ।

(सिद्धार्थ नेत्र खोल कर देखते हैं और सुजाता जल-पात्र
बढ़ा कर देती है । सिद्धार्थ वस्त्र में से सीधा हाथ निकाल
कर उसे ग्रहण करते हैं । सुजाता घुटनों के बल पृथ्वी पर
सामने बैठ कर दोनों हाथों से थाल सिद्धार्थ के सामने

रख देती है और प्रणाम करती है। फिर उठ कर सिद्धार्थ को सम्मुख किये प्रणाम करती हुई पीछे को लौटती है)
 मुजाता—(हाथ जोड़ कर) देव, मेरी पूजा को यथारुचि पाइये। यह निर्जल पायस स्वयं मैंने भक्तिपूर्वक बनाया है। आज मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हुई। जैसा मनोरथ आपने मेरा पूरा किया, भगवान वैसे ही आपका मनोरथ पूरा करें।

(शिर झुका कर प्रणाम करती है और लौट कर पूर्णा को स्नेह से आलिंगन करती है)

तू आज से मेरी प्रिय पुत्री हुई !

(दोनों प्रसन्न होकर जाती हैं)

वही दृश्य, वही दिन, समय : सूर्यास्त से पूर्व

(सिद्धार्थ आश्रम में टहल रहे हैं)

सिद्धार्थ—आज मेरा चित्त अत्यन्त शान्त और प्रसन्न है। मेरा चिरसाथी “निश्चय” तत्परता से मेरे साथ है, मुझे और साथी की अपेक्षा नहीं है। मेरा लक्ष्य आज समीप दीख रहा है। जब चित्त पूर्ण विकार-रहित हो जाता है तो उसकी शक्ति अनन्त होती है। उसकी तेजकिरण विश्वव्यापी रहस्य के अन्धकारपूर्ण गर्भ को चीरती हुई अदृष्ट लोकों को आलोकित करती है। शुद्ध चित्त ही विमुक्ति-सुख का स्पर्श करता है और अनन्त निर्वाण के अजर अमर सुख का अनुभव करता है। अशुद्ध चित्त अपनी कार्यक्षमता खो देता है जैसे काले मेघों से ढंका

चन्द्रमा, राख से ढका स्फुलिंग और कीचड़ में दबा हीरक । वश में किया हुआ निर्मल चित्त सर्वात्तम मित्र होता है— माता-पिता से भी अधिक उपकारी । आज मेरा शान्त चित्त सुख-स्रोत प्रवाहित कर मेरे रोम-रोम को पुलकित कर रहा है । आज निश्चय ही शुभ दिन है । मेरा लक्ष्य अत्यन्त समीप है ।

(वृक्ष और बज्रासन की ओर देखकर)

मेरा आसन नीरव निमंत्रण दे रहा प्रतीत होता है । यह पीपल का वृक्ष भी नये पत्र धारण करके प्रसन्न है, इसके पत्ते हल्की वायु से आन्दोलित हो रहे हैं, शब्द नहीं कर रहे । सूर्य अस्त हो रहा है और पक्षीकुल चुपचाप निशा-वास को लौटा रहा है, कोलाहल नहीं कर रहा । आकाश स्वच्छ और शान्त है । आज सारा वातावरण सहयोग का इच्छुक है । मैं निश्चय ही आज अपना लक्ष्य प्राप्त करूँगा ।

(श्रोत्रिय धसियारा नये कांस का गठ्ठा लेकर आता है)

श्रोत्रिय—भगवन्, नमस्कार !

सिद्धार्थ—कुशल हो श्रोत्रिय, आज इस समय कैसे आये ?

श्रोत्रिय—आज मैं नया कोमल कांस-त्रण लाया था । सोचा आपके आसन के लिये कुछ त्रण दे चलूँ । यह बैठने में सुखकारी होगा । अपना पहला त्रण सूख गया है । इस नये कोमल त्रण को ले लें ।

सिद्धार्थ—इच्छा हो तो दे जाओ ।

(श्रोत्रिय कांस के पूले निकाल कर देता है)

इतने ही पर्याप्त होंगे ।

श्रोत्रिय—भगवन्, मैं निर्धन घसियारा हूँ । घास-पत्ते बटोर कर अपना निर्वाह करता हूँ । मुझे यह तुच्छ भेंट देने में बड़ा संकोच हो रहा था । आपने यह त्रण स्वीकार करके मेरे हृदय को बड़ा सुख पहुँचाया । मेरी अभिलाषा पूर्ण हुई, भगवान आपकी अभिलाषा पूर्ण करें । मैं अब जाता हूँ ।

(प्रणाम करके जाता है)

(सिद्धार्थ बज्रासन पर चढ़कर त्रण के सिरे पकड़ कर बखेरते हैं और आसन का आकार बन जाता है)

सिद्धार्थ—सुन्दर आसन बन गया !

(आसन पर खड़े होकर पूर्व की ओर मुंह करते हैं, और निश्चयपूर्वक चारों ओर दृष्टिपात करते हैं । पृष्ठभूमि में अस्त होता हुआ सूर्य दिखाई पड़ता है)

सिद्धार्थ—कितने वर्ष से मैं इस आसन पर बैठ कर दुर्लभ संबोधि के लिये प्रयत्न कर रहा हूँ परन्तु वह लक्ष्य अप्राप्त ही रहा है । आज मैं इस आसन को अटल निश्चय के साथ ग्रहण करता हूँ । चाहे मेरा रक्त मांस निःशेष हो जाय, चाहे मेरे शरीर की त्वचा और अस्थि-पंजर ही रह जाय, मैं इस आसन को इस पृथ्वी पर उस समय तक नहीं त्यागूंगा, जब तक अपने परम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता ।

(फिर निश्चय से सम्मुख देखते हैं और आसन मार कर बैठ जाते हैं ।)

(आकाश-बाणी होती है)

अविचल ठहरो धरा, शान्त आकाश रहो तुम
सावधान हो दिशा, वायु मृदु मन्द बहो तुम
जल पृथ्वी नभ जहाँ, चराचर जड़ जंगम जो
शान्त रहो, अविषाद गहो दिवि-पितृ-लोक तुम
(धनुष पर बाण रखे उत्तेजित कामदेव का प्रवेश)

कामदेव—सुनो सिद्धार्थ !

उन्नत-वरुणी नयनाभिरामा
परिपूर्ण सुन्दर उरोज-कम्पिता
करभोरु-प्रौढ़ा रति-प्रिया विहाय
किमर्थ यह व्यर्थ तपश्चरण तव ?
सुलभ अमित भोग विलास स्वर्गीय
संगीत, रति, नृत्य—निनाद-रमणीय
उपवन सुपुष्पित, बहु देव-कामिनी
तजि यह निर्जन तपोवन-निवास !!
विकाल यह तप-व्रत मंदभाग !
देवापि दुर्लभ ऐश्वर्य त्याग ।
उठ वज्रसम यह आसन कठोर
आदेश यह मम, मैं कामदेव !

सिद्धार्थ—सौम्य कामदेव !

जग के भोग विलास क्षणिक अति दुर्गति-कारण
कृष्ण सर्प विकराल त्याज्य, मैं किये निवारण
शान्त परम पद प्राप्त करूँ अविचल निश्चय मम
रोग, जरा, कटुकाल-अतिक्रमण-हेतु तपः मम

तेरा यह आदेश व्यर्थ मेरे प्रति रतिपति !

कोपशील, हो शान्त, वृथा यह धनु-शर सम्प्रति ।

कामदेव—अरे सिद्धार्थ,

वृद्ध पिता शोकाकुल जो तेरा उपकारी

ममतामयी पोषिका त्यागी प्रिय महतारी

विकल अश्रुभुख त्याग अदोषा जीवन-संगिनि

धर्मविमुख ! अतिक्रूर ! बने हो आज महामुनि !

सिद्धार्थ—मैं न त्यागता कभी सत्य, अपने प्रियजनको

वृद्ध पिता, माता, मुत औ', जीवन-संगिनि को

यदि न जानता क्रूर मृत्यु इनको बिछुड़ाती

अश्रु-प्रवाह, विलाप, रुदन को व्यर्थ बनाती

जगती का नियत स्वभाव जानते

न मोह-वश यह ध्रुव सत्य मानते

वही शोक-विह्वल विरहाग्नि जलते

अज्ञान निज से दुसह दुख सहते

मैं काट कर यह सभी व्यर्थ बन्धन

मुक्त, विमुक्ति-पथ कृत पदार्पण

आसन अचल, अविचल मित्र "निश्चय"

निष्फल मेरे प्रति उद्योग तब यह !

कामदेव—है जन्म दुर्लभ कुल श्री-प्रपन्न

अमित रूप-सौष्टव-श्री तब शरीर !

कुल-धर्म-कायर ! धनु खडग त्याग

"अधर्म से धर्म" यह गति अधीर !

विशाल वक्षस्थल दीर्घ बाहु

तरुण वय-सुलभ दीप्त मुखारविन्द !
 राज्य-श्री तजि यदि दीन तप,
 निष्फल-प्रयत्ना जननी अभागि !
 यदि तू ठहरता निज बाहु-पाश में
 लिये प्रियतमा पीन - पयोधरा
 पीता अधर-मधु विकम्पितोच्छ्वास
 ज्वलंत क्यों मेरा क्रोध होता !

सिद्धार्थ—भोगादि सुख को विष-तुल्य जानिये
 महा अमंगल के मूल मानिये
 अतिकष्ट-साध्य
 क्षण नष्ट हों जो,
 इह लोक में और परलोक में पुनि
 बन्धन बड़े ये,
 इनको निवारिये ।

कामदेव—इन्द्रपद तुझको सुलभ कुमार
 यज्ञ और शस्त्र तेरे आधार
 मोक्ष-पद को कर धिक्कार
 न मेरे शासन के जा पार
 (सिद्धार्थ को ध्यानमग्न देखकर)
 सावधान, हे शौद्धोधनि,
 अतिक्रमण न कर मेरा आदेश
 तत्पर हूँ संधान किये शर,
 अति विकट जान मेरा आवेश

सिद्धार्थ—शान्त हो चंचल काम,
 धन्य हैं वे, जो निष्काम
 विषय - सुख महानर्क-सोपान
 ध्यान - सुख अविरल अमृत-पान

कामदेव—ओह, तब आओ तुम,
 तृष्णा, ममता, प्रीति !
 युवक यह मूढ़, यदपि दयनीय
 दिखाओ मेरा गौरव - दर्प
 नष्ट करदो इसका यह गर्व !

(प्रकाश होता है और दो तीन सुन्दर युवतियाँ आकर नृत्य करने लगती हैं। सिद्धार्थ निश्चल बैठे रहते हैं। कामदेव बड़े उत्साह से नृत्य द्वारा सिद्धार्थ के चंचल होने की संभावना प्रदर्शित करता है। कुछ समय तक प्रतीक्षा करके फिर उत्तेजित होता है और अपना बाण सिद्धार्थ पर छोड़ता है। चीत्कार के साथ एक घोर शब्द वायुमण्डल में व्याप्त होता है और युवतियाँ अदृष्ट हो जाती हैं। सिद्धार्थ निश्चल यथापूर्व आसन पर बैठे हैं। फिर हल्का सूर्यास्त-समय का प्रकाश हो जाता है)

कामदेव—(स्वगत) मेरा बाण व्यर्थ गया ! जिस बाण ने शिव का चित्त भी पार्वती के प्रति चंचल कर दिया था, वह इस कोमल युवक को छू कर टूट गया ! क्या इसके हृदय नहीं है !

(प्रगट) ओ, हृदयहीन ! तू पुष्पशर से वश में न आवेगा ! तेरे जैसे पापाण-हृदय के लिये मेरे पास अमित

शस्त्र-भंडार है ।

(जोर से चिल्ला कर) कहाँ है मेरी सेना !

अरे तुम क्रोध, मोह, मद, दर्प
शोक, लोभ, औ, विभ्रम, हर्ष !
चलो, आओ सेना के साथ
लिये अस्त्रों शस्त्रों को हाथ
न माने यदि मेरा अधिकार
वज्रआसन को कर दो क्षार
चूर कर इस ढोंगी का दंभ
पकड़ लो, कर दो वध अविलंब ।

सिद्धार्थ—(स्वगत) यह कामदेव मेरे लिये बड़ा प्रयत्न कर रहा है । यहाँ मैं अकेला हूँ । मेरे माता-पिता भाई और मित्र कोई समीप नहीं है । मेरे जन्म-जन्म के साथी, दान, शील, निष्काम, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य, अधिष्ठान मैत्री और उपेक्षा मेरे साथ निश्चल होकर ठहरो । मैं इस कठिन समय में तुम्हारा ही स्मरण करता हूँ ।

(शून्य अंधकार हो जाता है । चीत्कार करती, ढोल तुरई और झांझ बजाती कामसेना आती है । किसी के हाथ में त्रिशूल तलवार या बछी हैं, कोई गदा लिये हुये हैं और कोई जलती मशाल ! उनके लाल काले वस्त्र, बिखरे बाल और भयावह आकृतियाँ हैं । कामसेना के पास जो मशाल है उन्हीं के प्रकाश में दृश्य दिखाई देता है । हो हल्ला करती हुई कामसेना थिरक-थिरक कर नाचने लगती है, और सिद्धार्थ को भयभीत करने की चेष्टा करती

हैं। बारी-बारी से सिद्धार्थ के पास जाते और भय से लौटते हैं। कामदेव आकाश की ओर हाथ उठा कर देखता है और धड़ाकों के साथ राख कीचड़ पत्थर और जलते अंगारे गिरते दिखाई पड़ते हैं। कामसेना अपना वीभत्स नृत्य करती रहती है। एक भयंकर शब्द होता है और काम के अनुचर निस्तब्ध होकर दोनों ओर खड़े हो जाते हैं)

(आकाशवाणी होती है)

कामदेव, सुनो !

(विलम्बित लय में)

महापृथ्वी सा यह अति धीर, अरे पुण्यायुध, जान
वायु से जैसे अविचल शैल, मान योगी सिद्धार्थ महान
न है इसको तुझ से कुछ बैर, त्याग हिंसा को हे दुर्दान्त !
लोक-हित जन्मा, होगा बुद्ध, नियति है यही, शांत हो शांत !
कामदेव—(ऊपर देख कर) यह कौन अदृष्ट जीव है जो मुझे
उपदेश देकर रोकना चाहता है ? त्रैलोक्य में देव
ऋषियों समेत सारे चराचर मेरा नियंत्रण स्वीकार करते
हैं। यदि सिद्धार्थ ऐसा महान है तो कौन इसका
साक्षी है ?

(सिद्धार्थ से) सिद्धार्थ, तू इस आसन को छोड़ दे। यह
आसन तेरे लिये नहीं मेरे लिये है। त्रैलोक्य का स्वामी
मैं हूँ। बुद्धपद मैं प्राप्त करूँगा।

सिद्धार्थ—सौम्य कामदेव, यह आसन तो मेरे लिये ही है।
तुमने चरित्र की पूर्णता प्राप्त नहीं की, परमार्थ में पूर्णता

प्राप्त नहीं की, दान की पूर्णता भी तुम्हें प्राप्त नहीं है । न तुमने लोक-हित का आचरण किया और न ज्ञान का आचरण किया । इसलिये, सौम्य, यह आसन तुम्हारा नहीं हो सकता ।

कामदेव—सिद्धार्थ, तूने सत्य, दान, परमार्थ, त्याग और लोक-हित की पूर्णता प्राप्त की है, इसका कौन साक्षी है ?

सिद्धार्थ—मेरे जन्म-जन्म के आचरण की साक्षी यह अचेतन ठोस महापृथ्वी है ।

(सिद्धार्थ अपना सोधा हाथ वस्त्र से निकाल कर पृथ्वी की ओर लटकाते हैं । चारों ओर कम्पन होता है । पृथ्वी का कांपना कामसेना नाट्य से प्रदर्शित करती है । हाहाकार के साथ काम और उसके अनुचर भाग जाते हैं । चन्द्रमा का प्रकाश होता है और सिद्धार्थ ध्यान-मग्न हो जाते हैं)

(आकाश-वाणी)

हे कामजित, तुम्हें नमस्कार !

समय : रात्रि का प्रथम पहर

(सिद्धार्थ यथापूर्व ध्यान-मग्न बजासन पर बैठे हैं ।

पृष्ठ-संगीत के साथ आकाशवाणी होती है)

*यह पूर्व-जन्म-निवास !

पूर्व के यह जन्म शत-शत स्मरण हों आज कौन था मैं अरु कहाँ था कौन माता तात ।

*भगवान बुद्ध को पूर्व जन्मों की स्मृति होना ।

कौन साथी मम रहे पशु-पक्षि-मनुज-समाज
कर्म की गति जन्म की गति लखों दर्पन आज ।
भ्रमत अस्थिर स्वजन तजि, पुनि पुनि जनम यह मर्म
सार-हीन विलोकिये यह जगत कदली गर्भ'

समय : रात्रि का दूसरा पहर । दृश्य-वही ।
(संगीत-ध्वनि के साथ पुनः आकाशवाणी होती है ।)

*दिव्य दृष्टि पावत विशुद्ध मन ।

प्राणि-लोक के जन्म-मरण को

देखत जैसे निर्मल दर्पन ।

दुर्गत और सुगत प्राणिन के

मरण और उत्पत्ति-विलोकन ।

हंसि हंसि पाप करत जो जग में

दारुण दुख पावत पापी जन ।

चंचल चित्त नचावहि जिनको

गिरें योनि वे पशु पक्षी बन ।

प्रेत-लोक की दुमह क्षुधा उन

द्वेष-दाह दहकी जिनके मन ।

करि सुकर्म कछु स्वर्ग गये यदि,

काम-वासना दहकत तन मन ।

गिरत पुनः भूखे विषयन के

विलपत हा प्रिय, हा, नन्दन बन !

जन्म-मरण के अतिशय बन्धन

* भगवान् बुद्ध को दिव्य-चक्षु का लाभ होना ।

विषय-वासना लीने
मिले अमर निर्वाण परमपद
निर्मल मन के कीने ।

समय : रात्रि का तीसरा पहर । दृश्य वही
(संगीत-ध्वनि के साथ पुनः आकशवाणी होती है)

*जगत में जन्म-मरण-व्यापार ।

टिकी प्रवृत्ति कार्य-कारण को कर निश्चित आधार ।
‘भव’ से जन्म हुआ, भव का पुनि ^२‘उपादान’ है हेत
उपादन ‘तृष्णा’ से, तृष्णा रहो ^३‘वेदना’ टेक ।
अहो ‘वेदना’ है जब इन्द्रिय, करें विषय “स्पर्श”^४
यह “स्पर्श” तभी संभव जब इन्द्रिय होतीं सर्व ।
इन्द्रिय “नामरूप”^५ से होतीं, नामरूप “विज्ञान”^६
पुनि निमित्त नैमित्तिक यह दो, इति जग-जन्म-विधान
यह “विज्ञान” चेतना कहिये, “नामरूप” उपजावे
“नामरूप” से इन्द्रिय होतीं, जो “स्पर्श” बनावे
जब “स्पर्श” हुआ संभव, तो चित्त “वेदना” जागे
अहो “वेदना” की चिनगारी, “तृष्णा” को उपजावे

* बुद्ध का ‘प्रतीत्य समुत्पाद’ नामक दार्शनिक सिद्धान्त ।

- १—भोग प्राप्ति के लिये जीवन की पूर्ण तारतम्यता ।
- २—विषयों की प्राप्ति के लिये प्रगाढ़ प्रयत्न ।
- ३—हृदय की प्रथम अनुभूति—अनुकूल या प्रतिकूल ।
- ४—इन्द्रिय और विषयों का प्रथम स्पर्श, छूना या टकराव ।
- ५—मानसिक-भौतिक अवस्था या जड़-चेतन स्थिति का भेद ।
- ६—चित्त-सन्तति, मन या mind.

“तृष्णा “उपादान” को लाई, जीवन हुआ प्रवर्त
“भव” जागा तो जन्म हुआ, फिर जरा मरण दुख सर्व
जन्म-निरोध जानिये तृष्णा-उपादान-भव रोके
विद्या यह निर्वाण प्राप्ति की, निर्मल चित्त विलोके ।

समय: उषा-काल । दृश्य वही ।

(पक्षिकुल का कलरव, आकाश में संगीत ध्वनि और
पुष्पवृष्टि)

प्रभाती—

नमो बद्धं नमो बुद्धं
कामजित तथागतं—नमो बुद्धं....
सर्व-लोक-नायकं—नमो बुद्धं....
मुक्ति-मार्ग-शासकं—नमो बुद्धं....
कारुणिक परम प्रभो—
लोककल्याणकं—नमो बुद्धं....

(पर्दा गिरता है)

चौथा अंक

(पुनर्मिलन)

(बुद्ध के जीवन से सम्बंधित कपिलवस्तु-पुनरागमन की घटना)

पात्र

शुद्धोधन—कपिलवस्तु के राजा

मन्त्री—शुद्धोधन का मंत्री

बुद्ध—भगवान बुद्ध

सारिपुत्र—बुद्ध के अग्रश्रावक

छन्दक—सिद्धार्थ का युवराज समय का सारथी

राहुल—७ वर्षीय बालक, सिद्धार्थ का पुत्र

२ सैनिक, कुछ भिक्षु

गौतमी—बुद्ध की मौसी

यशोधरा—बुद्ध की स्त्री

मल्लिका—दासी

पहला दृश्य

स्थान—शुद्धोधन के अन्तःपुर-उद्यान का एक भाग ।
शुद्धोधन और गौतमी का बातें करते हुए प्रवेश : समय संध्या ।
शुद्धोधन—मेरे पुत्र की कैसी मंगलकीर्ति फैली हुई है !

वाराणसी ऋषिपत्तन में धर्म-चक्र-प्रवर्तन कर उसकी धर्म-कीर्ति देश देशान्तर में ऐसी व्याप्त होती जा रही है जैसे बालमूर्य का ऋषिक विकसित प्रकाश दिशाओं को आलोकित करता है । मगध-सम्राट् श्रेणिय बिम्बसार ने स्वयं मेरे पुत्र से धर्म-दीक्षा ली और उसके चरणों में अपना मुकुट-गर्वान्नित गिर रख दिया ! महान नगरों के श्रेष्ठी उसके धर्म-संघ को अपना सर्वस्व दान दे रहे हैं । जहाँ-जहाँ वह जाता है, दूसरे तपस्वी और तत्त्ववेत्ता, जो विशाल धर्म-संघों के नायक हैं, उसका धर्म ग्रहण करते हैं । गयासीस का सिद्ध महान काश्यप भी मेरे पुत्र की शरण आया है । और भी दूसरे जटाधारी, ब्रह्मचारी, अग्निहोत्री तथा हठयोगी मेरे पुत्र का धर्म स्वीकार कर रहे हैं । सहस्रों भद्रवंश के लोग घर से बेघर हो उसके भिक्षु-संघ में आ रहे हैं । सचमुच, ऐसे महान पुत्र के लिए यह राज्य अत्यन्त तुच्छ था ।

गौतमी—महाराज, अब कुमार अपने भिक्षु-संघ के साथ आ रहा है । मैं सोचती हूँ उसका दर्शन कैसा होगा ! क्या वह मेरे और आपके प्रति पुत्रवत् आचरण करेगा ! इतना

महान और जगत-वंदनीय होकर अपने पिता को उसी पूर्वस्नेह से आलिंगन करेगा ! क्या अपनी पोषिका को चिरकाल पश्चात् देख कर गद्-गद् हो स्नेह-वचन बोलेगा ! मैं यही सोच रहा हूँ—कुमार का प्रथम दर्शन अब कैसा होगा !

शुद्धोधन—सचमुच—यह असमंजस मुझे भी है । उसके शोक में मैं कैसा हो गया हूँ ! मुझे देख कर बूढ़े बाप को दुख सागर में डुबो कर छोड़ जाने का अपराध क्या वह स्वीकार करेगा ! पिता का प्रेम पुनः जागृत होकर उसके नेत्रों में कृतज्ञता का एक आँसू ला सकेगा ! मेरे लिए इतना ही बहुत है । वह जो रुचे सो करे । इतने महान को हम अपने तुच्छ बन्धनों में नहीं रख सकते । तो भी माता-पिता का हृदय पुत्र के किंचित स्नेह-प्रदर्शन से ही आश्वास्त हो जाता है । मैंने उसके प्रति सदा अपना कर्त्तव्यपालन ही तो किया है, यदि दोष किया है तो उसने । वह निर्मोही हमें छोड़ कर चला गया । वह हमारे दुख का थोड़ा अनुभव भी करे तो बहुत है । वह भी तो पिता है, और उसके भी तो हृदय है ।

गौतमी—वह राहुल को गोद में लेकर पिता-तुल्य आचरण अब करेगा—इसमें मुझे सन्देह हो रहा है । वह पिता पुत्र, पति-पत्नी के बन्धन की मधुरता को अब अनुभव नहीं करेगा महाराज ! जो तपस्या से पूर्व ही इतना निर्मोही था, वह अब बुद्ध होकर, निर्ममता की ध्वजा लेकर हमें उस रूप में पहिचानेगा भी ! इससे तो हमारी

व्याकुलता ही अधिक बढ़ेगी । जब देवी महामाया उसे शिशु छोड़ कर स्वर्गवासनी हुई तो कुमार की ममता ने मेरे वक्ष को दूध से भर दिया था जिससे मैं उसका जीवन बचा सकी । जो मेरी गोद में पला, गोद में खेला और गोद में सोया, उस अबोध कुमार की स्मृति आज मुझे फिर व्याकुल कर रही है । मेरा हृदय धड़क रहा है । यदि वह अपनी पोषिका के आँसुओं को, जो उसके दर्शनमात्र से प्रवाहित हो उठेंगे, अपने हाथ से पोंछ देगा तो मुझे शान्ति मिल जायगी । परन्तु—(भावावेश से चुप हो जाती है)

शुद्धोधन—हाँ, आज वे मधुर स्मृतियाँ मूर्तरूप होकर आँखों से सामने नाच रही हैं । जब चिरप्रतीक्षित मिलन की वेला समीप आ रही है तो हृदय में विचित्र व्याकुलता पैदा हो रही है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे पूर्वजन्म का कोई परम स्नेही आ रहा हो जिसकी स्मृति हमारे हृदय में जाग उठी हो, परन्तु उसको हमारी स्मृति कदाचित न हो ।

(सात वर्षीय राहुल का हाथ पकड़े यशोधरा का प्रवेश)

यशोधरा—महाराज, यह राहुल अपने पिता के लिए बड़ा लालायित हो रहा है । बार-बार कहता है—चलो, पिता आ गए, मैं देखूंगा ।

शुद्धोधन—(राहुल का हाथ पकड़ कर) राहुल, तू अपने पिता को देख कर क्या करेगा ? जिस पिता को तूने कभी नहीं देखा, जो पिता तुझे छोड़ गया, उसे तू क्यों देखना चाहता है ?

राहुल—मैं उनकी गोद में जाऊँगा ।

शुद्धोधन—उसने गोद में न लिया तो ?

राहुल—मैं उन्हें नमस्कार करूँगा ।

शुद्धोधन—नमस्कार करने पर भी गोद में न लिया तो ?

राहुल—मैं उन्हें नहीं जाने दूँगा ।

शुद्धोधन—(अट्टहास करके) नहीं जाने दूँगा ! तू बड़ा शक्ति-
शाली हुआ है जो उसे रोकेगा, और तो कोई रोक न
सका ।

(राहुल सहम कर मा की ओर देखता है)

राहुल—मैं कहूँगा—मा रोती है, अब मत जाओ ।

यशोधरा—तेरी मा का तो उन्हें पहिले ही बड़ा मोह है, मेरी
बात न कहना ।

राहुल—मा, तुमने कितनी बार रो-रो कर मुझ से कहा है—
तेरे पिता आवें तो उनको फिर मत जाने देना । अब
ऐसा क्यों कहती हो ? तुम देखना मैं उन्हें नहीं जाने दूँगा ।
(यशोधरा लज्जा से मुंह फेरती है और शुद्धोधन राहुल
को गोद में उठाते हैं ।)

शुद्धोधन—तेरा बाप न माने तो तू मेरी गोद में रहना ।

(गौतमी से) गौतमी, सिद्धार्थ भी गोद में ऐसे ही आ
जाता था । तब वह अबोध ही था । यह बचपन का
स्नेह फिर किस प्रवाह में बह जाता है ! हमारे स्नेह का
अधिकार भी वह अब मानेगा या नहीं, आज तो हमें
यह चिन्ता हो रही है ।

(मन्त्री का शीघ्रता से प्रवेश)

मन्त्री—प्रसन्न हों महाराज, आपका पुत्र आ गया ।

शुद्धोधन—चलो, आज यह शुभ समाचार मिला !

गौतमी—आ गया कुमार ! (ऊपर देख कर) हे भगवान !

शुद्धोधन—कहाँ हैं इस समय वह ?

मन्त्री—नगर के बाहर न्यग्रोधवन में ही उन्होंने अपने भिक्षुसंघ के साथ पड़ाव डाल दिया है—अनुमान से नौसहस्र भिक्षु होंगे । दूत अभी समाचार लाया है ।

राहुल—पिता आ गये ! मैं उनके पास जाऊँगा ।

(यशोधरा राहुल का हाथ पकड़ती है)

शुद्धोधन—(अधीरता से) अब क्या करणीय है मन्त्री !

गौतमी—कुमार को यहाँ शीघ्र बुलाना चाहिये ।

मन्त्री—महारानी, अब आपका कुमार महान बुद्ध है । संसार का पूजनीय है । उसका उचित सत्कार करना होगा ।

शुद्धोधन—हमें अपने महान पुत्र का स्वागत करना उचित है । यद्यपि वह हमारा पुत्र है, परन्तु अपने बुद्धत्व गौरव से वह सब का पूज्य बन गया है । उसने शाक्य-कुल को गौरव प्रदान किया है । हमें न्यग्रोध वन जाकर ही उसका हार्दिक अभिनन्दन करना चाहिये ।

मन्त्री—मैं भी यही उचित समझता हूँ ।

शुद्धोधन—मन्त्री, प्रजा को इसकी सूचना दो । और सात वर्ष से छा रहे विषाद को समाप्त करने की घोषणा करा दो । राज-भवनों पर पताकायें फहराई जायें और प्रजा अपने आनन्द-उत्सव का पुनः समारोह करे । प्रजा उस महान बुद्ध का दर्शन पाकर कृतकृत्य हो, जो कभी उसका प्रिय

युवराज था और जिसके गृहत्याग को प्रजा ने अपनी महान विपत्ति माना । मन्त्री, कुमार के नगर-प्रवेश की उचित व्यवस्था कराओ, भीड़ और हल्ला से उसे कष्ट न होने पाये । उसके भिक्षुसंघ के भोजन इत्यादि का भी उचित प्रबन्ध करो ।

मन्त्री—जो आज्ञा ।

शुद्धोधन—और हाँ, कल का दिन ही शुभ है । कल ही कुमार नन्द को युवराज पद पर प्रतिष्ठित करना उचित होगा । अपने महान पूज्य भाई का आशीर्वाद भी उसे प्राप्त हो जायगा । राजकाज तो चलना ही है । कुल की रक्षा के लिये यह प्रबन्ध परम आवश्यक है । मैं भी इस चिन्ता से मुक्त होकर ध्यान-सुख में ही अपना शेष जीवन बिताना चाहता हूँ । पुरोहित से पूछ कर यह कार्य भी शुभ लग्न में सम्पन्न हो जाना चाहिये । कल ही पुत्र के आगमन और युवराज के अभिषेक के उपलक्ष्य में दीप-मालिका-समारोह की घोषणा करा दो । तुम्हारा क्या विचार है मन्त्री ?

मन्त्री—युवराज-पद अब एक दिन के लिये भी रिक्त नहीं रह सकता । जिनका इस पद पर अधिकार था उनके युवराज होने की कल्पना करना भी उनका अपमान होगा । वे सम्राटों से भी महान हैं । इस लोक का क्या, स्वर्ग का साम्राज्य भी उनके लिये तुच्छ है । महारानी गौतमी और पुत्री यशोधरा की क्या सम्मति है ?

यशोधरा—कुमार नन्द वीर और सदाशय हैं, वे पुत्रवत् मेरे

प्रिय हैं। वे राजकाज को सुचारु रूप से चला सकेंगे।

गौतमी—शुभलग्न में अभिषेक करने की बात है, यह निर्णय तो पहले ही हो चुका है, उसे अब यथाशीघ्र कर डालिये। महाराज को कुछ अवकाश लेने दो।

शुद्धोधन—तब चलो मंत्री, कल के लिये यह प्रबन्ध कर देना चाहिये। गौतमी, तुम न्यग्रोधवन चलने की तैयारी करो तथा राहुल और यशोधरा को अपने रथ में साथ लो।

(मंत्री और शुद्धोधन जाते हैं)

गौतमी—(यशोधरा से) तुम्हारी यह वेष-भूषा शोक की प्रतीक है, इसका परित्याग करो। तुम्हें प्रसन्न होकर कुमार का स्वागत करना चाहिये।

यशोधरा—मैं नहीं जाऊँगी, महारानी !

गौतमी—अरे !

यशोधरा—मेरा जी ठीक नहीं है।

गौतमी—आश्चर्य ! क्या तुम्हें आज भी प्रसन्नता नहीं है ?

यशोधरा—प्रसन्नता मुझे कहाँ से हो महारानी ! क्या आयं पुत्र मुझ अभागी को फिर से ग्रहण करने आ रहे हैं ? आप प्रसन्न हों, आपका पुत्र बुद्ध होकर, सम्राटों से भी महान बन कर आ रहा है। राज्य चलाने के लिये महाराज के पास बहुत लोग हैं। शाक्य-कुल का गौरव बढ़ा है, इससे सब को परम संतोष है। परन्तु मुझे सुखसंतोष अब कहाँ ! जब आर्यपुत्र घर छोड़ कर गये थे तो वे मेरे थे और मैं उन्हें पाने को व्याकुल थी। आज जब वे लौटे भी हैं तो मेरे नहीं हैं—मैं यह निश्चय जानती हूँ। वे

जितने महान हैं, उतने मुझसे दूर हैं । तब और अब के अन्तर के आभास मात्र से मेरा सिर घूमता है और मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ता है । मैं कैसे प्रसन्न हो सकती हूँ ! मेरा हृदय वर्षा-कालीन कृष्णपक्ष के आकाश की तरह अन्ध-कारपूर्ण है, महारानी !

गौतमी—किसी स्त्री का पति महान हो तो उसे गौरव का अनुभव होता ही है ।

यशोधरा—हाँ, वह स्त्री को अपनी करके मानता हो, तब न । अन्यथा उसकी महानता स्त्री के लिये ऐसे ही दुखदायी होगी जैसे सूर्य का तेज उम कमल को जो जलाशय से दूर पड़ा हो ।

गौतमी—यशोधरा, जिसके लिये तू ने इतना विलाप किया, जिसके लौटने के लिये वर्षों तक जप और मंगल कर्म किये, जिसकी शैया की तू एकनिष्ठा से पूजा करती रही है, आज जब वह आया है तो तुझे क्या हो रहा है ?

यशोधरा—मेरे हृदय में विषाद का ज्वर चढ़ रहा है । मैं अपने जीवन को आज अपने से अलग खड़ी होकर देख रही हूँ । कुमार के साथ मेरी तन्मयता बिखर कर अलग हो रही है । मैं देख रही हूँ—जिस इष्ट के लिये मैंने सात वर्ष तक विलाप किया वह मेरी आशाओं पर अन्तिम तुषार-पात करने को आया है ।

गौतमी—ऐसा मत सोच, कुमार और तेरे बन्धन का मधुर प्रतीक यह राहुल तेरी गोद में है । यदि सिद्धार्थ संसारके कल्याण के लिये तुझ से अलग रहे तो भी क्या ! बहुत

से राजा अपने रनिवास को छोड़ कर शत्रु-विजय को निकले और फिर कभी नहीं लौटे । उनकी स्त्रियों ने संतोष ही किया होगा ।

यशोधरा—महारानी, मैं कैसे बताऊँ ! वह त्याग दूसरी प्रकार का था । तुम नहीं समझती ! यह अभागा राहुल भी अब उनका नहीं है । मैं नहीं जाऊँगी, आप अपने पुत्र को देख आवें । राहुल चलो ।

(राहुल का हाथ पकड़ कर जाने लगती है)

राहुल—मा, मैं जाऊँगा ।

यशोधरा—नहीं बेटा, तेरे पिता यहीं आवें तब देखना । अनाथों की तरह उनके सामने जाकर खड़ा होना उचित नहीं ।

गौतमी—मैं राहुल का अपने साथ ले जाऊँ । बालक के मन को न मार ।

यशोधरा—इस आगे का जीवन यों ही बीतेगा । इसका मन कौन रख सकेगा !

(शुद्धोधन का प्रवेश)

शुद्धोधन—चलो गौतमी । अरे यशोधरा, पुष्प मालायें कहाँ हैं, यह विलम्ब कैसा ?

गौतमी—यशोधरा नहीं जाना चाहती ।

शुद्धोधन—नहीं जाना चाहती !

गौतमी—राहुल को भी नहीं जाने देती ।

शुद्धोधन—मेरी बेटी रुष्ट हो रही है आज । ठीक है गौतमी, सिद्धार्थ ने यशोधरा का हृदय बहुत दुखाया है, हम तुम से अधिक । अब उसे मान करने का अधिकार है । परन्तु

बेटी, अपनी बात कहने का भी समय आवेगा, इस समय आवेश का रोकना उचित है ।

गौतमी—जो संसार के प्राणियों पर दया करता है वह हमारा दुख भी जानेगा ! वह राज्य का तिरस्कार कर सकता है परन्तु हमारा तिरस्कार नहीं कर सकता । करता तो लौट कर न आता ।

शुद्धोधन—वह अपना प्रण पूरा करके लौटा है । वैसे ही लौट आता तो उसका क्या मान रह जाता ! मेरा पुत्र सम्राट से भी अधिक गौरवशाली होकर लौटा है । चक्रवर्ती राज्य भी उसकी प्रतिष्ठा के सम्मुख तुच्छ है ।

गौतमी—उसने लोक-कल्याण के लिये ही तो इतने कष्ट उठाये हैं । हमें छोड़कर यदि वह अपना सुख देखने जाता तो बुरी बात होती ।

शुद्धोधन—इक्ष्वाकु वंश में राम के बाद तेरे पति ने ही वह प्रतिष्ठा पाई है और तू भी सीता के समान गौरवशालिनी है । दुख की बातों को सोचकर अपना मन छोटा न करो । चलो विलम्ब होता है ।

यशोधरा—महाराज, आपके और महारानी के वचन को मैं सदा स्नेह का आग्रह मानती रही हूँ । आपके स्नेह से मैं जीवित भी रह सकी हूँ । परन्तु आज मेरा हृदय विचित्र गति से आन्दोलित हो रहा है । मैं राम में और आर्य पुत्र में समता नहीं देखती और न सीता सी मैं भाग्यशालिनी हूँ । राम बन को गये थे तो सीता को अपने साथ ले गये थे । परन्तु यहाँ तो मुझे सोई हुई जानकर

आर्यपुत्र त्याग कर चले गये । मैं आर्यपुत्र के कठोर तप की बात सुनती थी तो अपना दुख भूलकर उनके लिये मंगल कामना करना ही मुझे सूझता था । आगे की बात सोचने का मुझे समय ही न था, मेरा हृदय दुःखभार से इतना दबा हुआ था कि विचार-शक्ति अवकाश ही न पाती थी । आज जब वे आ गये हैं तो उस भार को हटा कर एक अस्पष्ट आशंका सर्प की तरह फूटकार करती हुई जागृत हुई है । अचानक । जेठ के सूर्य से तपी पृथ्वी की तरह मैं सन्ताप से आज तक आकुल रही और जब शीतल वर्षा का समय आया है तो पहले एक आँधी उठ रही है । मैं विचलित हो रही हूँ । आज मुझ में शक्ति नहीं कि मैं खड़ी भी रह सकूँ ।

(बैठ जाती है । राहुल उदास होकर देखता है । गौतमी सम्हालती है)

शुद्धोधन—अच्छा तुम यहीं रहो । (उदास होकर जाता है)

गौतमी—यशोधरा, आज तेरा धैर्य कहाँ गया !

(यशोधरा उठकर जाती है)

राहुल—(मा के पीछे जाता हुआ) मा, तुम्हें क्या हो गया !

(गौतमी दूसरी ओर जाती है)

दूसरा दृश्य

न्यग्रोधवन का एक भाग । सामने बुद्ध की गन्धकुटी का द्वार है और उसके सामने बैठे सारिपुत्र भिक्षुओं को उपदेश दे रहे हैं । समय संध्या—

सारिपुत्र—भिक्षुओ, भगवान ने यह ठीक ही कहा है—

न परेसं विलोमानि न परेसं कताकतं,

अत्तनो'व अवेक्खेय कतानि अकतानि च ।

हमें दूसरों के दोष नहीं देखने चाहिये । दूसरों ने क्या किया और क्या नहीं किया, इसकी भी आलोचना नहीं करनी चाहिये । हमने स्वयं क्या किया है और क्या नहीं किया—इसी का चिन्तन करना चाहिये ।

और भी कहा है—

चन्दनं तगरं वापि उप्पलं अथ वस्सिकी,

एतेसं गंधजातानं सीलगंधो अनुत्तरो ।

चन्दन तगर कमल और जुही की गंध अच्छी होती है परन्तु शील की अर्थात् सदाचार की गंध इन सब से उत्तम होती है । भिक्षुओ, मनुष्य किसी स्थिति में हो, भिक्षु हो, गृहस्थ हो, निर्धन हो, धनी हो, अनपढ़ हो, पण्डित हो, उसे शीलवन्त होना चाहिये । सदाचार की रक्षा करता हुआ वह सब का प्रिय होता है । शील ही ज्ञान प्राप्ति का प्रथम सोपान है । भगवान के बताये आर्य अष्टांगिक मार्ग में शील का प्रथम स्थान है—जैसे सम्यक्

वाणी, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका और सम्यक् उद्योग । शील-धर्म के उचित पालन से समाधि प्राप्त हो सकती है और समाधि के बाद प्रज्ञा उत्पन्न होती है । इसलिये भिक्षुओ, शील का महत्व समझिये ।

(शुद्धोधन और मंत्री का प्रवेश)

दोनों—आप महात्माओं को नमस्कार !

मंत्री—क्षमा करें आप महात्मन, धर्म-कथा में बाधा हुई । ये कपिलवस्तु के महाराज हैं और अपने पुत्र से मिलने आये हैं । मैं इनका मंत्री हूँ ।

(सारिपुत्र समेत सब भिक्षु खड़े होते हैं)

सारिपुत्र—शुभदर्शन है आप आयों का ! भगवान के पिता आये हैं !

शुद्धोधन—हाँ, मैं अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ ।

(गंध-कुटी का द्वार खोल कर बुद्ध बाहर आते हैं । सब भिक्षु एक ओर खड़े हो जाते हैं । बुद्ध शान्तभाव से सामने आकर खड़े होते हैं । मंत्री हाथ जोड़ कर नमस्कार करता है । शुद्धोधन अपनी तलवार की नोंक को पृथ्वी पर टेक कर, उसकी मूँठ पर दोनों हाथ रख कर बृद्धावस्था से झुका हुआ खड़ा होता है और बुद्ध को देखकर सिर झुकाता है । फिर शिर उठा कर बुद्ध को देखता, स्नेह, उत्सुकता, दुःख, आश्चर्य और गौरव-भाव प्रदर्शित करता है)

शुद्धोधन—(दुखी होकर) मैं तुम्हें कैसे सम्बोधित करूँ ! तुम ऐसे निर्विकार और शान्त खड़े हो ! तुम्हारे मुख पर

स्नेह-पूर्ण हास्य की एक रेखा भी न देख मैं निराश हो रहा हूँ । मेरा हृदय जो पुत्र-वात्सल्य से द्रवित था अब गौरव-विस्मय से अभिभूत है । मैं पुत्र कहूँ, तो मुझे भय है, तुम्हारा अगौरव होगा । भगवान कहूँ, तो मेरा हृदय पुत्र-वात्सल्य के अधिकार से वंचित होकर टूटता है !

बुद्ध—महाराज, आप सरल प्रकृति और स्नेही पिता हैं, तो भी मुझे पुत्र मानने का मोह छोड़िये ।

शुद्धोधन—मुझ अपने पिता को देखकर तुम्हें कुछ भी आनन्द नहीं हुआ—यह बात बर्छी की तरह मेरे हृदय को पीड़ा दे रही है ! तुम जब गये थे तो तम्हारा पुत्ररूप मेरी आँखों में बसा था । आज तुम आये हो तो वही रूप होते हुये भी कितने भिन्न हो ! मुझ पिता के प्राणों को यह परिवर्तन व्याकुल कर रहा है !

बुद्ध—महाराज शान्त हों, और मुझ पुत्र से धर्म ग्रहण करें जो अमृत के समान है । पिता-पुत्र का मोह धर्म-ग्रहण में बाधक होगा ।

शुद्धोधन—मैं पुत्र-स्नेह का प्यासा दौड़ कर आया हूँ—मुझे शान्ति नहीं हो रही जैसे प्यासे चातक को जो मेघ की आशा से आकाश में जाय और गरम धूल को पावे ।

मंत्री—आपकी शान्त आकृति देख कर विस्मय होता है । आपका हिमालय सा धैर्य, सूर्य-प्रभा सी मुखदीप्ति और स्वर्ण-वर्ण सुन्दर शरीर है ! चक्रवर्ती राज्य के स्वामी आप हो सकते थे, परन्तु आज भिक्षा से निर्वाह करते हैं !

शुद्धोधन—शाक्य-कुल में जन्म लेकर भिक्षावृत्ति क्या तुम्हें

.. शोभा देती है ? हमारा कुल इन्द्र से भी याचना नहीं कर सकता । कुल-मर्यादा का कुछ तो विचार किया होता ! हमारे पास तुम्हारे लिये और तुम्हारे सहस्रों भिक्षुओं के लिये क्या भोजन का प्रबन्ध नहीं है !

बुद्ध—महाराज यह हमारा कुलधर्म है ।

शुद्धोधन—कहाँ, शाक्य-कुल में कभी किसी ने भिक्षा नहीं माँगी । अपने कुल को क्यों लज्जित करते हो ?

बुद्ध—हमारा कुल बुद्धों का कुल है जो भिक्षा पर ही निर्वाह करता आया है ।

शुद्धोधन—(हार्दिक पीड़ा नाट्य करते हुए) सुख तुम्हारा शत्रु क्यों हो गया है ! कौन सा लक्ष्य है जिसने तुम्हें प्रियजन से विमुख कर दिया है ! तुम्हें न पिता से अनुराग है, न पुत्र से, न माता से न स्त्री से ! हमारे अश्रुप्रवाह भी हाय, तुम्हें इस कठोर व्रत से विमुख नहीं कर सकते !
(तलवार की मूँठ पर फिर सिर रख कर दुःख प्रदर्शित करता है)

(बुद्ध नेत्र बन्द करते हैं और आकाश से एक शब्द के साथ विचित्र प्रभा बुद्ध के शरीर पर पड़ती है । आकाश में अनेक शब्द और विविध प्रकाशमय दृश्य दीखते हैं । मंत्री और शुद्धोधन आकाश में हो रहे दृश्य को विस्मित होकर देखते हैं । भिक्षु हाथ जोड़ कर खड़े होते हैं ।)

(प्रकाश समाप्त होता है)

शुद्धोधन—(विस्मयपूर्ण उल्लास से) हे सुगत, मैंने आपके अनेक दिव्यरूप देखे और आपके अनन्त तेज को देखा ।

मेरा हृदय गद्गद् हो रहा है और मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है । मोह-वश पुत्र मान कर मैंने जो आप से कहा हो, उसे हे करुणामय, क्षमा करें । आपका यह भिक्षु-वेष ही कल्याणकारी है । आपके सम्मुख राजसी वस्त्र और आभूषण धारण किये अब मैं लज्जित हो रहा हूँ । मेरा अज्ञान दूर करें भगवान, और मुझे धर्मोपदेश से अनुग्रहीत करें । मैं आपकी शरण हूँ । (शुद्धोधन मस्तक नवाता है)

बुद्ध—हे राजन्, आप मानसिक शान्ति प्राप्त करें और मानसिक शान्ति के लिए ही उद्योग करें । मन वचन और शरीर के सभी व्यापार शुद्ध होने से यह शान्ति प्राप्त होती है ।

चित्त के दोषों पर विजय प्राप्त कीजिये । काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से मुक्त हुआ चित्त विमुक्ति-सुख का स्वाद पाता है और यही चैतसिक शान्ति परम-सुख का स्रोत प्रवाहित करती है ।

संसार के भोग कठिन प्रयत्न से उपलब्ध होते हैं और अल्प काल में नष्ट हो जाते हैं । उनमें स्वाद कम है, उनका बन्धन बड़ा है और प्राणि केवल अतृप्ति पाता है । जिन भोगों को पाकर केवल तृष्णा शेष रहती हो और जिन्हें छोड़ने में बड़ा दुख होता हो ऐसे भोग-साधनों को महा अनर्थकारी समझें । स्वर्ग में भी उनसे शान्ति नहीं होती, फिर इस लोक की तो बात ही क्या है ।

निर्वाण सुख सर्वोत्तम सुख है जहाँ न जन्म है न मृत्यु न

रोग और न भय । पुरुषार्थ करके उसी परमपद को प्राप्त करना उचित है जिससे फिर कुछ करणीय कर्म शेष न रहे ।

जगत के वास्तविक रूप को समझिये जो नक्षत्र मंडल की तरह निरन्तर भ्रमणशील है दीन प्राणी के लिए कोई विश्राम स्थल नहीं है । वह बार-बार जन्म लेता, वृद्ध होता और मर कर अन्यत्र जाता है—और फिर जन्म लेता है । यह क्रम अबाध गति से चलता है और प्राणी को विश्राम नहीं मिलता । मनुष्य की दृष्टि काम मोह से ढंकी रहती है और वह इस महाविपत्ति से निकलने का मार्ग नहीं देख पाता । हे राजन्, मोह में न पड़िये और करणीय कर्म जानिये ।

मंत्री—अहो भाग्य हमारे ! भगवान के मुख से धर्म सुनने का सौभाग्य हुआ ! शाक्य-कुल का मंत्री होकर आज मेरा जन्म सफल हुआ । भगवान को मेरा बार-बार प्रमाण !
(प्रणाम करता है)

शुद्धोधन—मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है ! आपका महा-प्रयत्न सफल हुआ जो अभूत पूर्व ज्ञान-लाभ आपको हुआ । आपने राज्य और स्वजन को त्याग कर बनवास ठीक ही किया । यदि आप राजा होते तो प्रजा का पालन करते, परन्तु अब महामुनि होकर संसार के कल्याण के लिए भव-बंधन तोड़ने का उपदेश कर रहे हैं । आप राज्य के बिना भी संसार के स्वामी हो जो आवागमन की महाविपत्ति पर विजयी हुए हो । मेरा हृदय गद्गद

हो रहा है । मैं आज मोह-बन्धन के दुख को देख रहा हूँ । यद्यपि मैं राजा और पिता के पद पर प्रतिष्ठित हूँ तो भी मैं आपकी शरण जाता हूँ और आपको प्रणाम करता हूँ । (प्रणाम करता है)

(पर्दा गिरता है)

तीसरा दृश्य

स्थान—कपिलवस्तु का राजमार्ग । दो सैनिक राजाज्ञा की विज्ञप्ति करते हुये आते हैं । एक तुरई बजाता है, दूसरा विज्ञप्ति करता है । समय पूर्वान्ह ।

पहला—(तुरई बजाता है)

दूसरा—नगरवासियो, सुनो ।

शाक्य-कुल-शिरोमणि, सूर्य-ध्वज-धारी महाराजाधिराज शुद्धोधन देव की राजाज्ञा है—सुनो ।

राजकुमार सिद्धार्थ अपना लक्ष्य सिद्ध कर और महान् बुद्ध होकर कपिल नगर को लौट आये हैं । वे भगवान् भिक्षु-संघ के साथ नगर में आ रहे हैं । आज सात वर्ष से छाये बिषाद का अन्त समझना चाहिये ।

पहला—(तुरई बजाता है)

दूसरा—और सुनो—

आज राजकुमार नन्द को युवाराज-पद पर प्रतिष्ठित किया जायगा । राजभवन में उनका अभिषेक-समारोह होगा ।

पहला—(तुरई बजाता है)

दूसरा—और सुनो—

राजकुमार सिद्धार्थ के लौटने और युवराज नन्द के अभिषेक के उपलक्ष्य में आज मंगल दीपमालिका समारोह होगा ।

पहला—(तुरई बजाता है) अरे तुझे याद पड़ रही है उस दिन की जब हमारे युवराज स्वर्ण-रथ पर सवार होकर नगर भ्रमण को निकले थे और हम इसी मार्ग से वृद्ध रोगी और दीन लोगों को हटाते फिरते थे ?

दूसरा—याद है मित्र, बीती बात और देखे स्वप्न में कुछ अंतर नहीं होता । उस दिन का राजपथ का मनोहर दृश्य स्वप्न सदृश आज याद पड़ता है । उस दिन द्वारों और झरोखों पर आभूषणों की झंकार और चमक थी, कोलाहल था । प्रसन्नता और उत्सव का रंग बरस रहा था । आज रंग दूसरा है । वही पथ, वही नगर, वही युवराज, वही सब कुछ, परन्तु फिर भी बहुत बदला हुआ ! उस दिन के युवराज श्वेत अश्व वाले स्वर्ण-रथ पर इन्द्रसम दीप्ति को प्रभासित करते विराजमान थे । अलंकृत राजकुमारों का समूह और सुसज्जित सेना उनके साथ थी । बाजे बज रहे थे । आज वे ही युवराज काषाय वस्त्र पहिन कर भिक्षा-पात्र हाथ में लेकर नीचे नेत्र किये नंगे पाँव इस पथ पर चले आ रहे हैं । सेना की जगह भिक्षुकों की टोलियाँ सारे राजपथ को घेरे घूम रही हैं । बाजों की जगह सूत्रों का गंभीर उच्चारण सुनाई देता है । आज ललनाओं के मुख कुंडलों से शून्य हैं । उनके मुख गंभीर और नेत्र झुके हुये हैं जैसे पीड़ित हों ! युवराज पर करुण दृष्टिपात करतीं हाथ जोड़ कर नमस्कार कर रही हैं ! देव ने युवराज को क्या कर दिया इसे कोई नहीं जानता ।

पहला—कहते हैं देवों ने यह रचना रची थी ।

दूसरा—यह देवों की ही करतूत हो सकती है । नहीं तो कैसे कोई राजभोगों को छोड़कर भिक्षा-धर्म में सन्तोष माने !

पहला—सामने से यह सारथि छन्दक आ रहा है । उस दिन देवों ने पहिले इसी की मति फेरी थी । इसी ने सब बातें युवराज को सिखाई और यही युवराज को घोड़े पर बैठा कर बन में छोड़ आया था । कैसा भटका हुआ सा आ रहा है ! हमारे महाराज भी दयालु हैं जो इसका सिर नहीं कटवा दिया ।

(छन्दक का प्रवेश)

दोनों—आर्य छन्दक, नमस्कार ।

छन्दक—नमस्कार, भद्र सैनिकों, युवराज इसी पथ से आ रहे हैं ?

पहला—हाँ आर्य, युवराज नहीं, भगवान बुद्ध कहो अब । उस दिन की याद करो जब तुम युवराज को रथ पर बैठाकर लाये थे ।

छन्दक—यह वही स्थान भी है । उस घटना की याद आते ही मुझे रोमांच हो आता है । वह वृद्ध भिक्षुक जाने कहाँ से निकल आया !

दूसरा—हमने तो कोई भिक्षुक उस दिन राजपथ पर नहीं छोड़ा था । कोई देव भिक्षुक बन कर आया होगा । नहीं तो कैसे और लोग उसे न देखते ! लोग यह भी कहते हैं कि एक देव युवराज को कंथक पर बैठा कर आकाश मार्ग से ले गया और तुमको घोड़े की पूँछ से बाँध दिया था । आर्य, यह सत्य है ?

छन्दक—यह समय ऐसी अनर्गल बातों का नहीं है । जाओ अपना काम करो ।

दूसरा—अब कोई और माया रचोगे ? युवराज को भिक्षु तो बना दिया !

पहला—युवराज को दीन भिक्षु-वेष में देख कर अपना हृदय ठंडा करो अब । इसीलिये यहाँ आये हो !

छन्दक—सैनिको, मुझे दोष न दो । इतनी बड़ी घटना का मैं तुच्छ सारथि कारण नहीं हो सकता । मैं अपने स्वामी के साथ बन में ही रहना चाहता था परन्तु उन्होंने आज्ञा नहीं दी । मैं अब उनके चरण पकड़ूंगा, और उनकी शरण में ही रहूँगा । वे परम दयालु हैं, मुझ पर आज कृपा अवश्य करेंगे ।

पहला—आर्य छन्न, क्या तुम भी परिव्रजित होगे ?

छन्दक—हाँ, मित्रो, यदि भगवान की कृपा हुई तो मुझे आज ही उनकी शरण मिल जायगी ।

पहला—आर्य छन्दक, क्षमा करना, आपके प्रति कटुवचन का दोष हमसे हुआ ।

(दोनों सैनिक जाते हैं)

छन्दक—(स्वगत) यह वही स्थान है । (दो कदम हट कर) मैं यहाँ खड़ा था और युवराज वहाँ खड़े थे । वे प्रश्न करते थे और मैं उत्तर देता था । आज मुझे नहीं मालूम मैंने क्या-क्या कहा था । मेरा मस्तिष्क उत्तेजित था । उस दिन मेरे हृदय, वाणी और मस्तिष्क पर किसी और का अधिकार था । नहीं तो क्या मेरे वचन का इतना

बड़ा परिणाम हो सकता था !

(नेपथ्य की ओर देख कर) युवराज कुछ भिक्षुओं के साथ इधर ही आ रहे हैं जैसे बृहस्पति ऋषिकुल के साथ इन्द्र-पुरी में प्रवेश कर रहा हो । तब ये युवराज थे, आज ये सम्राटों के पूज्य लोकवंद्य भगवान बुद्ध हैं । भिक्षुवेष में भी वे कितने भव्य और दर्शनीय हैं ! इनका दर्शन कितना शान्त और मनोरम है ! मैं अपना नाम बताऊँगा तो वे मुझे अवश्य पहचानेंगे ।

(नेपथ्य में भिक्षु गाते हैं)

कामतो जायते सोको, कामतो जायते भयं,

काम तो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयं ।

(बुद्ध का प्रवेश, पीछे सारिपुत्र तथा कुछ अन्य भिक्षु हैं)

छन्दक—(बुद्ध के चरण पकड़ कर) भगवान, मैं आपका सेवक छन्दक हूँ ।

बुद्ध—(सीधे हाथ से आशीर्वाद नाट्य करते हैं ।) कुशल से हो छन्दक !

छन्दक—(हाथ जोड़ कर) भगवान मुझे शरण मिले ।

बुद्ध—सारिपुत्र, छन्दक को आज परिव्रजित करो ।

(बुद्ध आगे जाते हैं भिक्षु सूत्र गाते हुए पीछे चलते हैं, छन्दक भी पीछे जाता है ।)

चौथा दृश्य

स्थान—अन्तःपुर के दुतल्ले भवन का एक भाग । बाईं ओर एक द्वार है जहाँ से राजआँगन में जाने का मार्ग है । आँगन में नन्द का अभिषेक समारोह हो रहा है और इस द्वार की ओर से कभी-कभी कोलाहल का शब्द और मन्त्रध्वनि सुनाई पड़ती है । सीधी ओर एक वातायन है जिसमें खड़े होकर नगर की सड़कों का दृश्य दिखाई पड़ता है । सामने एक द्वार है जिसमें अन्तःपुर के अन्य भवनों का मार्ग है ।

समय पूर्वान्ह

यशोधरा काषायवेष में सामने के द्वार से प्रवेश करती है । पहले द्वार पर खड़े होकर राज-आँगन में हो रहे अभिषेक-समारोह का दृश्य देखती है । फिर वातायन पर जाकर खड़ी हो जाती है । मल्लिका पूजा की थाली में पुष्प धूप आदि लेकर सामने के द्वार से आती है । चारों ओर देख कर कुछ समझने की चेष्टा करती है । जय-जयकार और तुरई का शब्द होता है । मल्लिका द्वार पर झाँकती है । यशोधरा वातायन पर खड़ी रहती है ।

मल्लिका—(यशोधरा के पास जाकर) देवी, कुमार नन्द का अभिषेक सम्पन्न हो चुका ।

यशोधरा—(बाहर देखती हुई) सभा विसर्जित हो गई ?

मल्लिका—नहीं, अभी नहीं हुई ।

यशोधरा—(मुड़ कर) पूजा की थाली कहीं रखदे । एक ऊँचा

आसन लाकर बिछादे । आर्य पुत्र यहाँ आर्यें तभी मुझे थाली सँजो कर दे देना । आर्यपुत्र सभा-भवन को ही आ रहे हैं । (फिर वातायन पर खड़ी हो जाती है)
मल्लिका—(झटपट थाली को एक ओर रख कर) मैं भी देखूँ ।
 (वातायन पर खड़ी होती है)

यशोधरा—(वातायन से हट कर विचार में डूब जाती है)
 (स्वगत) यदि वे दृष्टि उठा कर देखते, तो मुझे वातायन पर खड़ी देख सकते थे । वे इस वातायन से सुपरिचित थे । जब वे भवन को लौटते थे तो प्रतीक्षा करती हुई मुझे दूर से ही देखते थे । क्या वे इतना भी भूल गये ! कदाचित अब वे मुझे देखना ही नहीं चाहते !
 (बैठ कर दोनों हाथों से मुंह ढँक लेती है)

मल्लिका—(पास आकर) राजकुमारी, तुमने दर्शन किये अपने आर्य पुत्र के ! अब उनके केश कटे हुये हैं और वे भिक्षु वेष में हैं, तो भी वैसे ही सुन्दर हैं । उन पर लोग पुष्प-वर्षा कर रहे हैं और जय-जयकार से नगर गूँज रहा है । सारे शाक्य कुमार सिर नवाये उनके पीछे चल रहे हैं । ऐसी पूजा तो मैंने किसी की नहीं देखी ! तुम क्या सोच रही हो ?

यशोधरा—मैं सोच रही हूँ—आर्यपुत्र इसी नगर में स्वर्ण रथ और स्वर्ण पालकी में बैठ कर निकलते थे । सुसज्जित अंगरक्षक उनके पीछे होते थे—स्वर्ण छत्र उनके ऊपर लगा होता था । आज वे भिक्षुओं से घिरे नंगे पाँव ही चल रहे हैं । लज्जास्पद भिक्षापात्र भी उनके हाथ में है !

शाक्य-वंश की जो विभूति थे, जिन पर राष्ट्र को गर्व था, जो शत्रु-विजय करके खड्ग हाथ में लिये विजययात्रा में दर्शनीय होते, जिनके विजय-घोष को कपिलवस्तु का कोट बार बार प्रतिध्वनित करता कम्पायमान होता, वे ही आज धर्म-भीरू, नीची दृष्टि किये, राज्यलक्ष्मी को लांछित करते, मानों उन्मत्तों से प्रशंसित होते आ रहे हैं ! इतने बड़े संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जो इनको इस अनिष्टकारी मार्ग से हटा सके ! मैं यही सोच रही हूँ ।

मल्लिका—देवी यशोधरा, मैं एक दासी हूँ और धर्म-शास्त्र से अनभिज्ञ हूँ । परन्तु राज-कुलों में रहते और संगीत-प्रिय हृदय रखते मैंने गुरुजनों से जो थोड़ा सुना और समझा है, उससे इतना तो जानती हूँ कि उनके भिक्षुवेष में लज्जा की कोई बात नहीं है, जिनके चरणों में राजा, महाराजा और सम्राट् अपना मस्तक रख देते हैं, सहस्त्रों भद्रजन उनका धर्म ग्रहण कर उनके भक्त बन रहे हैं, तो कुमार का यह काम कोई छोटा नहीं है । मैंने राजाओं का इतना गौरव होते नहीं देखा, मैंने सुना भी नहीं है । दूर से ही मैंने उन्हें देखा है, परन्तु मेरा हृदय इतने से ही गद्गद् और हर्ष-विभोर हो रहा है ।

(द्वार की ओर राज-आंगन से जय-जयकार का घोष होता है, मल्लिका दौड़ कर उधर देखती है)

यशोधरा—(स्वगत) यह जयजयकार मेरे दुर्भाग्य पर नगर-वासियों का अट्टहास है या कुछ और ? जिन्हें वे परित्याग कर चले गये थे, और जो विकल होकर उनके

लिये विलाप करते थे, किस आशा से उनके पास दौड़ रहे हैं ? क्यों सब मंत्रमुग्ध से भविष्य का विचार त्याग कर पागल हो रहे हैं ! आर्यपुत्र सभी के लिये मानों स्वर्ग का राज्य लेकर आये हैं । केवल मैं ही इस शून्य भवन में परित्यक्ता सी अकेली बैठी हूँ । हाँ, मेरा ही दुख सब से बड़ा है और सब मुझ को ही भूल रहे हैं ! आर्यपुत्र के इस दिग्विजय-घोष में मेरे हृदय का कातर विलाप क्षीण होकर डूब रहा है जैसे महा मेघ गर्जन में नीड़ में बैठे एकाकी पक्षी की पुकार ! (फिर सोच कर) परन्तु, यह घोष मुझे पुलकित क्यों करता है जैसे वर्षा-घोष एक चातक को । वे मुझ से कह कर जाते तो मुझे इतना संताप न होता ! परन्तु, क्या फिर मैं उन्हें जाने देती !

वे छन्दक से कह गये थे—मैं लौट कर मिलूंगा । और अब वे आगये हैं । मुझे भूल नहीं सकते । कैसे भूल सकते हैं—मेरा दोष ही क्या है !

मल्लिका—(पास आकर उत्सुकता से) देवी, चल कर देखो तो !

यशोधरा—क्या देखूँ ! जा तू ही देख !

मल्लिका—भगवान राज-सभा के बीच आसन पर बैठे हैं । उनका पात्र युवराज नन्द लिये खड़े हैं । एक-एक करके सब चरण-वन्दना कर रहे हैं ।

यशोधरा—महाराज और महारानी गौतमी भी अपने पुत्र की चरण-वन्दना कर रहे हैं ?

मल्लिका—हाँ, सब । महाराज, महारानी, मंत्री, पुरोहित, नन्द, महानाम, अन्तुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त सभी । रनिवास की स्त्रियाँ वन्दना करने को खड़ी हैं । देवी, तुम भी चलो ।

यशोधरा—मैं वहाँ नहीं जाऊँगी । किसी का कुछ नहीं बिगड़ा । मेरा ही सर्वनाश हुआ है ।

(मल्लिका जाकर फिर द्वार पर खड़ी होती है)

यशोधरा—(स्वगत) आर्यपुत्र, तुम्हारी यह महानता सब को सुखकारी है, परन्तु मेरा हृदय पीड़ित है । क्या मैं ही भूल कर रही हूँ ! मैं तुम्हें अपना करके ही रखना चाहती हूँ—जैसे पहले थे । परन्तु अब तुम मेरे बाहुपाश में नहीं समा सकते जैसे महामेघ एक चातक के । यही मेरी पीड़ा है । संसार मुझे अनजाने तुच्छ कहेगा और तुम को महान, मेरी वेदना को कोई न देखेगा—तुमने मुझ पर कैसी विपत्ति ढाई ! हम दोनों जीवन-साथी थे—दोनों समान । जीवन में प्रेम था, उमंग थी, रस था । हाय, फिर कैसी विषमता तुमने उत्पन्न कर दी ! मेरा हृदय तुम्हारे लिए कैसा व्याकुल था, मेरे प्रिय ! आज क्यों वह विद्रोह पर आरुढ़ है ! मेरी अन्तरात्मा हृदय के इस घृणित उद्वेग पर क्षुब्ध है । परन्तु मुझे कुछ सूझ नहीं रहा ! हाय !

(दोनों हाथों से मुँह ढकती हैं । गौतमी और राहुल का बायें द्वार से प्रवेश ।)

गौतमी—पुत्री, आज तुझे क्या हो गया है ? तू यहाँ अकेली

बैठी विषाद में डूब रही है ! वहाँ सब पूछ रहे हैं—
यशोधरा कहाँ है ।

(यशोधरा खड़ी होती है और गौतमी स्नेह से उसके आँसू
पोंछती है)

यशोधरा—महारानी, आर्यपुत्र यहाँ आवेंगे, तभी मैं उनकी
वन्दना करूँगी, वहाँ जाना मुझे अच्छा नहीं लग रहा ।

गौतमी—यदि तू समझती है सिद्धार्थ ने तेरे प्रति दोष किया
है तो भी तू उदार हृदय से अपने पति को क्षमा
कर दे । जिसके पति ने अपने सुख भोगों को त्याग कर
लोक-कल्याण का व्रत लिया हो, उस स्त्री को अपने खोये
सुखों पर विलाप करना शोभा नहीं देता । हम स्त्रियाँ
भी त्याग कर सकती हैं । हमारी उदारता और क्षमा-
शीलता ही हमारी महानता है । हमारा मधुर मातृत्व
भाव पुरुष के लिये दिव्य वरदान है जो उसे आकाश
तक उठाता है । सिद्धार्थ की महानता के राग में तेरे मूक
त्याग का करुण स्वर सदैव संसार सुनेगा । अब विषाद
से मन को छोटा न कर । तेरा पति पूर्ण चन्द्र की तरह
संसार को आलोकित और प्रमुदित करता बिहार करेगा,
तब क्या तू विरहिणी चकवी की तरह सुख स्वार्थ-दाह
से अभिभूत होकर विलाप करेगी ? मेरी पुत्री, तू भी
मलय की शीतल सुरभित वायु बन कर चन्द्रालोक में
घुलमिल कर संसार को सुखकारी हो सकती है । तेरा
जीवन भी उनके साथ धन्य और मंगलकारी हो सकता
है । अपने ही पुत्र के चरण-स्पर्श से मेरे हृदय का विषाद

आज ऐसे ही क्षीण हुआ है जैसे दया के स्पर्श से द्वेष ।

उसका मंगलमय दर्शन हृदयको अनायास ही शान्ति देता है ।

यशोधरा—महारानी, आपके वचन से मेरा हृदय-भार हलका अवश्य हो रहा है, जो अंधकार मुझे घेर रहा था वह भी क्षीण हो रहा है, परन्तु आर्यपुत्र के त्याग में मैं अपनी अवहेलना देख रही हूँ । स्त्री के प्रति घृणा का मुझे आभास हो रहा है । स्त्री का हृदय सम्मान से ही उदारता ग्रहण कर सकता है । यदि मुझ में गुण समझते हैं, तो आर्यपुत्र यहीं आवेंगे, तभी उनकी वन्दना करूँगी ।

(गौतमी चुपचाप जाती है । मल्लिका फिर द्वार पर खड़ी होती है)

राहुल—मैंने पिता को देखा ।

यशोधरा—वे तुझसे बोले ?

राहुल—वे चुप हैं, किसी से नहीं बोले ।

यशोधरा—कैसे हैं तेरे पिता ?

राहुल—बड़े अच्छे ! मा ! उन्होंने ऐसे वस्त्र क्यों पहने हैं ?

तुम कहती थीं वे युवराज हैं ।

यशोधरा—अब वे राजाओं के राजा हो गये हैं, तब से ऐसे वस्त्र पहन लिये हैं । पहले राजाओं के वस्त्र पहनते थे, मुकुट कुण्डल पहनते थे, और हाथ में खड्ग लेते थे ।

राहुल—सहस्रों लोग उन्हीं के से वस्त्र पहन कर आये हैं, वे कौन हैं ?

यशोधरा—तेरे पिता की सेना है ।

राहुल—ऐसी सेना मैंने नहीं देखी थी । उनके हाथ में

क्या है ?

यशोधरा—भिक्षा-पात्र ! यह उनका शस्त्र है ।

राहुल—यद कैसा शस्त्र है ! मिट्टी का है वह !

यशोधरा—अपने शत्रुओं पर वे इसी से विजय पाते हैं ।

राहुल—ऐसा शक्तिशाली शस्त्र है यह भिक्षा पात्र !

यशोधरा—हाँ ।

राहुल—तो मा, मैं भी एक पात्र लूंगा ।

यशोधरा—(राहुल का मुँह बन्द करके) चुप रह, ऐसा वचन मत बोल ।

(मल्लिका दौड़ कर आती है)

मल्लिका—(घबड़ाई हुई) राजकुमारी, भगवान यहीं आ रहे हैं !

यशोधरा—(चौंक कर) तू सच कह रही है ?

मल्लिका—हाँ, ठीक कह रही हूँ । वे आ रहे हैं । एक भिक्षु उनके साथ है और महाराज उनके पीछे हैं ।

यशोधरा—(शीघ्रता से आतुर हुई) तब, ला । पूजन की थाली कहाँ है ?

(स्वागत) मेरे लिये इतना ही बहुत है । हाय, स्त्री के हृदय, तेरा द्रोह इतने ही से शान्त हो गया !

(प्रगट) राहुल, तू यहीं रहना, मैं तेरे पिता की वन्दना करूँगी । वे यहीं आ रहे हैं ।

(यशोधरा द्वार की ओर मुँह करके रंगमंच के बीच में खड़ी होती है । मल्लिका थाली लिये उसके समीप कुछ पीछे हट कर खड़ी होती है । आगे बुद्ध और पीछे सारि-

पुत्र आते हैं। यशोधरा दोनों हाथों पर खुले केश रख कर बुद्ध के चरणों पर सिर रख देती है। फिर उठकर, थाली लेकर आरती उतारती है। आरती के बाद फिर उसी प्रकार चरण वन्दना करती है। बुद्ध वातायन पर दृष्टि लगाये खड़े रहते हैं। शुद्धोधन का प्रवेश। बुद्ध आसन पर बैठते हैं। मल्लिका चरण-वन्दना करके हट जाती है। यशोधरा राहुल के समीप जाकर खड़ी होती है। सारिपुत्र और शुद्धोधन बुद्ध के समीप ही द्वार के पास खड़े हैं।)

शुद्धोधन—राहुल, पिता की चरण वन्दना करो।

(राहुल चुपचाप आकर, चरण छूकर मा के पास चला जाता है और उसके शरीर की ओट में खड़ा होकर बुद्ध को देखता है)

(बुद्ध से) भगवान, यह राहुल पिता की तरह सरल है। जब आप गये थे, तब तो यह शिशु था, जब से समझदार हुआ है, पिता की बड़ी याद करता है।

(यशोधरा को बताकर)

यह मेरी पुत्री बड़ी गुणवती है। आपके काषाय वस्त्र पहनने की बात सुनी तो काषाय धारिणी हो गई। आपके एक समय भोजन की बात सुनकर एकाहारिणी हो गई। आपके पृथ्वी पर सोने की बात सुनी तो पृथ्वी पर शैया लगा ली। आपके फूल माला गन्ध त्यागने की सुनी तो इन सभी वस्तुओं से विरत हो गई। पीहर वालों ने बार बार पत्र भेजे—तुम यहाँ आजाओ, हम तुम्हारी सेवा

करेंगे, परन्तु मेरी बेटी ने ऐसे पत्रों का उत्तर नहीं दिया ।
ऐसी गुणवती है यह मेरी बेटी !

बुद्ध— न अच्छा प्रिय से कभी वियोग
न इच्छित अप्रिय से संयोग
सुखी वे हुये शान्त निर्द्वन्द्व
काट कर प्रिय-अप्रिय के योग ।
शोक-सन्ताप भरे रति - राग
भयाकुल करता प्रिय का प्रेम
न उनके शोक न है सन्ताप
न भय, जब हुआ अरति का नेम ।
सुविधा सदाचार सम्पन्न
सत्यवादी सविनय धर्मिष्ठ
लोक - हित करता अपने कार्य
पुरुष वह है जगती का इष्ट ।
दूर से लौटा सकुशल गेह
प्रवासी बहुत दिवस पश्चात
यथा करते स्वागत सप्रेम
हितैषी सुहृद् बन्धु स्वजात
तथा स्वागत करते सस्नेह
लोक से जाता जब परलोक
मित्रवत् उसके शुभ सत्कृत्य
रहा जो पुण्यात्मन इहि लोक ।

(बुद्ध उठ कर जाने को उद्यत होते हैं । सब हाथ जोड़ कर
बन्दना करते हैं । यशोधरा अलग राहुल के कान में

कुछ कहती हैं)

राहुल—(दौड़ कर और बुद्ध का वस्त्र पकड़ कर) पिता,
तुम्हारी छाया सुखकारी है, मुझ पुत्र को दायज दो ।

(बुद्ध बाहर जाते हैं राहुल साथ जाता है)

राहुल—(नेपथ्य से) पिता तुम्हारी छाया सुखकारी है, मुझ
पुत्र को दायज दो ।

(सब जाते हैं । यशोधरा रह जाती है)

यशोधरा—वे स्वप्न की तरह आए, और चले गए ! दूज के
चन्द्र की तरह मेरे हृदयाकाश के एक छोर को अपनी
दर्शन-प्रभा से केवल छू कर चले गए ! यद्यपि वे मेरी
ओर नहीं देख रहे थे, तो भी उनके कमल-नेत्र असीम
करुणा-सौरभ से मेरे हृदय को शान्त कर रहे थे । उन
की सुपरिचित वाणी आज दिव्य-वीणा का घोष बन कर
मेरे हृदय में परिव्याप्त हो रही है । उनका उपदेश मुझ
संतप्ता के लिए करुणामय आदेश ही था । (हाथ जोड़ कर)
आर्यपुत्र, मुझ कोपशीला के दोष क्षमा करो । मेरे हृदय
को शक्ति दो जिससे मैं महासागर में तरंग-संगीत की
तरह, प्राची-सूर्य के सुयश में उषा की लाली की तरह,
वसन्त के वैभव में मलयानिल की तरह सदा तुम में ही
रम सकूँ । मेरे सर्वस्व, मेरे लिए और गति नहीं है !

(सामने के द्वार से जाती है)

(मल्लिका और गौतमी का प्रवेश । मल्लिका सीधी
वातायन पर दौड़ कर देखती है)

मल्लिका—युवराज नन्द भगवान का पात्र लेकर उनके साथ

ही जा रहे हैं । सारिपुत्र राहुल का हाथ पकड़ कर उनके पीछे है !

गौतमी—हाय, ये दोनों उनके साथ कहाँ जा रहे हैं !

(शुद्धोधन का प्रवेश)

महाराज, युवराज नन्द भगवान के साथ कहाँ जा रहे हैं ? इन्हें रोकिये । वे राहुल को भी ले गये हैं !

शुद्धोधन—(आसन पर बैठ कर) नन्द गौरवार्थ उनके साथ गया होगा । दोनों लौट कर आ जायेंगे !

गौतमी—मेरा मन काँप रहा है ।

(पर्दा गिरता है)

पाँचवा दृश्य

स्थान—न्यग्रोधवन का एक भाग । बुद्ध की गंधकुटी के सामने सारिपुत्र राहुल कुमार को धर्म में दीक्षित कर रहे हैं । राहुल भिक्षु के वेष में है, बाल कटे हुये है । अन्य भिक्षु एक ओर बैठे हैं ।

समय सन्ध्या

सारिपुत्र—(आसन पर बैठ कर और राहुल को सामने बैठा कर) राहुल, आचार्य की ओर भिक्षुओं की पाद-वन्दना करो ।

(राहुल सब के चरण छूता है)

अब उकड़ूं बैठो (बता कर) ऐसे ।

(राहुल उकड़ूं बैठता है)

चादर एक कंधे पर करो ।

(राहुल एक कंधे पर चादर रखता है । सारिपुत्र सम्हालते हैं)

ठीक, अब बोलो—

बुद्धं सरणं गच्छामि

राहुल—बुद्धं सरणं गच्छामि

सारिपुत्र—धम्मं सरणं गच्छामि

राहुल—धम्मं सरणं गच्छामि

सारिपुत्र—संघं सरणं गच्छामि

राहुल—संघं सरणं गच्छामि

(दोबार इसी प्रकार और कहते हैं)

सारिपुत्र—अब उठो, (एक भिक्षु से) राहुल को ले जाओ और शयनासन दो ।

(राहुल भिक्षु के साथ जाता है)

भिक्षुओ,

आज बहुत से शाक्य-कुमार और प्रजाजन परिव्रजित हुये हैं । अच्छी तरह दुख के क्षय के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है । वे बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आये हैं । जैसे पक्षिकुल निशावास को प्रातः आलोक में त्याग कर उन्मुक्त हो खुले आकाश में विचरता है, उसी प्रकार भगवान के स्वाख्यात धर्म में प्रजाजन काम-सुख रूपी निशा-आवास त्याग कर स्वतंत्र होकर विहार करते हैं । यहाँ, सन्तप्त असन्तप्त होते हैं, पीड़ित अपीड़ित होते हैं । भगवान ने कहा है—

(सब गाते हैं)

सारिपुत्र—जग वैरी हो रहें अवैरी सुख से हम जीवें ।

सब भिक्षु—बैरी जग में त्याग वैर सब सुख से हम विहरें ।

सारिपुत्र—आतुर जग में हुये अनातुर, सुख से हम जीवें,

सब भिक्षु—व्याकुल जग में धीरज धारे सुख से हम विहरें ।

सारिपुत्र—उत्सुक जग में हुये अनुत्सुक सुख में हम जीवें,

सब भिक्षु—राग सहित नर फिरें जीत मन सुख से हम विहरें ।

(पर्दा-गिरता है)

दृश्य वही

समय: उपाकाल के समीप रात्रि ।

(एक दीपक का प्रकाश । कुटी के द्वार के सामने भिक्षु पृथ्वी पर जहाँतहाँ सोये हुए हैं । यशोधरा बिखरे बालों को एक शाल से ढके हुए प्रवेश करती है । सोये हुये भिक्षुओं में राहुल को ढूँढती है ।)

यशोधरा—(राहुल को देखकर) हाय, मेरा राहुल वस्त्र का एक टुकड़ा बिछा कर पृथ्वी पर पड़ा है ।

(बैठ कर गोद में लेती और स्नेह से चूमती है)

राहुल—(जाग कर) मा ! मा !!

यशोधरा—मैं यह रही बेटा !

राहुल—(पहचान कर) मा ! (लिपट जाता है)

यशोधरा—(राहुल के मस्तक पर हाथ फेर कर) तेरे केश किसने काटे बेटा !

राहुल—आचार्य ने ।

यशोधरा—तेरे वस्त्र कहाँ हैं ?

राहुल—आचार्य ने फेंक दिये ।

(यशोधरा राहुल को स्नेह से थपथपाती है और आकाश की ओर देख कर रोती है)

यशोधरा—तू मुझे छोड़ कर यहाँ क्यों आया ?

राहुल—आचार्य ने कहा था—हमारे साथ चलो ।

यशोधरा—तूने मुझे क्यों नहीं पुकारा ! मैं दौड़ कर आती और तुझे ले जाती ।

राहुल—मा, आचार्य कहते थे—पिता भगवान हैं। उन्होंने मुझे अपनी शरण में लिया है और कहते थे—मा की याद न करना।

(यशोधरा सुबक कर रोने लगती है)

(सारिपुत्र का प्रवेश)

सारिपुत्र—देवी यशोधरा, विकाल में यहाँ कैसे आई ?

यशोधरा—अपने पुत्र को लेने। भन्ते, मुझ अबला के पुत्र को क्यों छीनते हो ?

सारिपुत्र—पुत्र अपने दशबलधारी पिता के संरक्षण में है। देवी, इसे छीनना क्यों समझती हो ?

यशोधरा—जो अपने माता-पिता स्त्री-पुत्र से मोह छोड़ चुका, उसे अपने अवोध बालक के संरक्षण का अधिकार नहीं है। यह मेरा पुत्र है। मैं इसे छाती से लगा कर रखूंगी। जब मैं ही उनकी कुछ नहीं रही, तो यह बालक भी नहीं है !

(रोती है)

सारिपुत्र—राजकुमारी, तुमने राहुल से कहा था—पिता से दायज माँग ?

यशोधरा—कहा था भन्ते ! मैं यह नहीं जानती थी—तुम भिक्षु अबला-हृदय की दुर्बलता के प्रति इतने कठोर हो ! मेरे पुत्र को यह दायज मिला है ! उसके केश काट लिये, उसके बहुमूल्य वस्त्र फेंक दिये और उसे कठोर पृथ्वी पर एक टुकड़ा बिछा कर डाल दिया ! दोष मेरा था, इस अवोध बालक का नहीं था !

सारिपुत्र—दोष किसी का नहीं है। परम कारुणिक बुद्ध किसी का दोष नहीं देखते। जो आवागमन के बन्धन से मुक्त हैं, जो दिव्य-चक्षु से सारे जगत की उत्पत्ति और विलय को देखते हैं, चराचर सहित सारे लोकों को जो दुख से मुक्त करना चाहते हैं, जिनका शेष पार्थिव जीवन लोक-कल्याण के लिये है—केवल लोक-कल्याण के लिये, जिनकी सद्धर्म-वाणी मुक्ति का मार्ग बताती है, जिनके हृदय में अत्यन्त तुच्छ जीव के लिये भी असीम स्नेह और करुणा का स्रोत सदा प्रवाहित रहता है, ऐसे पिता राहुल को सद्धर्म-शरण के अतिरिक्त और क्या दायज दे सकते थे ! दूसरे सब दायज इस बालक के दुख के लिये होंगे।

(यशोधरा खड़ी होती है। राहुल खड़ा होकर दोनों को देखता है)

यशोधरा—कैसा सद्धर्म है यह ! सनाथ अनाथ हो रहे हैं, माता-पिता पुत्रों से बिछुड़ रहे हैं, कुल उजड़ रहे हैं, घर शून्य स्मशान बन रहे हैं !

सारिपुत्र—तुम ममता के आवेश में ऐसा वचन कह रही हो देवी !

यशोधरा—मा का ममता ही जीवन है। बिना ममता के मा का जीवन प्रेत का जीवन होगा—मैं राहुल के बिना नहीं रह सकती।

सारिपुत्र—मा की ममता कब तक पुत्र की रक्षा कर सकती है ?

यशोधरा—मुझसे ऐसे प्रश्न न करो। मैं मा की तरह सोच

सकती हूँ, निर्मम भिक्षु की तरह नहीं !

सारिपुत्र—आज राहुल के लिए तुम्हारा चित्त विचलित हो रहा है । एक दिन तुम्हीं उसको छोड़ दोगी । निष्ठुर काल सबको पीसता है । उसके सामने विलाप करके तुम अपनी इच्छा नहीं मनवा सकतीं । अपने राहुल को तुम राज-सुलभ भोगों में प्रसन्न हुआ देखना चाहती हो । तुम अपने पति को भी ऐसा ही देखा चाहती थीं । परन्तु उन महापुरुष ने अपने महाप्रयत्न से ऐसे जीवन की निस्सारता को देखा और जीवन के दुखों को कारण समेत ठीक-ठीक पहचाना । उन दुखों से लोगों को मुक्ति का मार्ग बताना ही उनका धर्म है । राहुल का भविष्य उनके हाथ में अधिक सुरक्षित है जिनके पास उपकार की अनन्त शक्ति है । राजकुमारी, तुम राहुल का इतना उपकार नहीं कर सकतीं । कौन मा, ममता से ही सही, अपने पुत्र को अधिक सुखी नहीं देखना चाहेगी ? स्वयं डूबते हुए पुत्र को साथ लेकर डूबना सच्ची मातृ-भावना के अनुकूल नहीं है । तुम्हें सन्तोष होना चाहिए कि उन परम कारुणिक भगवान ने राहुल को अपनी शरण में लिया ।

अशोधरा—भन्ते सारिपुत्र, मैं एक दुर्बल हृदय स्त्री हूँ । आप भिक्षुओं का धैर्य पृथ्वी का सा धैर्य है, जो सूर्य का ताप, चन्द्रमा का स्नेह, वायु का प्रवाह, मेघों की घनधोर वर्षा और व्रजप्रहार सब को समान रूप से सहन करती है, और तनिक भी विचलित नहीं होती । मुझ अबला की पति

और पुत्र के बिना क्या गति होगी, इसके अनुमान से मेरे गात काँप रहे हैं। मेरे हृदय में इतनी शान्ति कहाँ ! मुझे शान्ति नहीं है। वे भगवान क्या मुझे दुखिया पर करुणा नहीं कर सकते ! क्या मुझे इस शोक-सागर से नहीं उबार सकते !

सारिपुत्र—राहुल-माता, भगवान बड़े कारुणिक हैं। अब उषा की वेला हो रही है। वे गन्धकुटी के बाहर आते ही होंगे। उनके दर्शन से तुम्हें अनायास ही शान्ति मिलेगी। (एक एक करके सब भिक्षु उठते हैं और अपने वस्त्र लपेटते हैं। गन्धकुटी का द्वार खोल कर बुद्ध निकलते हैं। यशोधरा उनकी ओर जाकर घुटनों के बल बैठती है)

यशोधरा—(हाथ जोड़ कर) मेरे प्रभु, क्या मेरा जीवन शरद के मेघ की तरह निस्सार और भटक-भटक कर नष्ट होने के लिये ही है ! यदि यही मेरी गति है तो अपनी करुणा के अनन्त आकाश में मुझे रहने दो और उसी में शनैः शनैः निःशेष होकर घुल जाने दो। मेरी यही प्रार्थना है।

(बुद्ध के चरणों में मस्तक रखती है और बुद्ध सीधे हाथ से स्वस्ति नाट्य करते हैं)

सारिपुत्र—उठो राहुल-जननी, भगवान ने मौन से तुम्हें शरण दी। धर्म का व्रत लो और भिक्षुणी-संघ बनने तक यहीं रह कर स्त्री-जाति का कल्याण करो।

बुद्ध—भिक्षुओ, विचरण करो। बहुजन के हित के लिये, सुख के लिये, उन पर दया करने के लिये, देव और मनुष्यों के प्रयोजन, हित और सुख के लिये, विचरण करो। भिक्षुओ, आदि, मध्य और अन्त सभी अवस्थाओं में कल्याणकारी धर्म का शब्दों और भावों सहित उपदेश करो। सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य का प्रकाश करो।

(बुद्ध जाते हैं। उनके पीछे एक-एक करके सभी भिक्षु जाते हैं। सारिपुत्र राहुल को साथ लेकर पीछे से जाते हैं। राहुल मुड़ कर यशोधरा को देखता जाता है। यशोधरा हाथ जोड़े एकटक सब को जाता हुआ देखती खड़ी रहती है। नेपथ्य से सूत्रोच्चारण की ध्वनि सुनाई देती है)

कामतो जायते सोको कामतो जायते भयम्
कामतो विप्पमुत्तस्स नत्थि सोको कुतो भयम् ।

(शुद्धोधन, मन्त्री, गौमती, और मल्लिका का प्रवेश ।)
गौमती और मल्लिका यशोधरा के समीप खड़ी सूत्र-ध्वनि को सुनती हैं। यशोधरा ध्यान-मग्न, नेत्र बंद किये नेपथ्य की ओर मुंह करके घुटनों के बल बैठती है।

शुद्धोधन—(सूत्रोच्चारण सुन कर)

उषा-कालीन यह सूत्रोच्चारण मेरे लिये आकाश से अन्तिम विदा का सन्देश दे रहा है ! मेरा यशस्वी पुत्र, राहुल, और नन्द गये ! मन्त्री, अब युवराज-पद किसी को देकर मुझे राज-काज से मुक्त करो। महानाम को राज्य दे दो।

मन्त्री—महानाम परिव्रजित हो गये।

शुद्धोधन—अनुरुद्ध को दे दो।

मन्त्री—वे भी गये।

शुद्धोधन—आनन्द, भृगु, किम्बिल, भद्रजित, देवदत्त इनमें जो चाहे उसे दे दो।

मन्त्री—महाराज, ये सभी राजकुमार परिव्रजित होकर गये।

शुद्धोधन—(माथा थाम कर) अभागी शाक्य-कुल की राज्य-लक्ष्मी, आज कोई तुझे ग्रहण करने वाला नहीं है !

(नेपथ्य में सूत्रध्वनि दूर होती जाती है)
(पर्दा गिरता है।)

